जो इस द्युलोक तथा पृथिवी लोक की रचना करता है तथा संसार के मध्य में व्यापक है जिसमें सब दिशायें तथा लोक लोकान्तर विद्यमान हैं, इस मन्त्र में साफ यह लिखा है कि परमात्मा की कृति से संसार की रचना होती है, इससे भी सिद्ध है कि संसार का उपादानकारण प्रकृति है।

योनिश्च हि गीयते ॥ १ । ४।२७ ॥

उस प्रकृति का नाम योनि भी वेदों में आया है। यथा—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा
य० ३१ । १९ ॥

वह परमेश्वर सब संसार में विद्यमान है, स्वयं उत्पन्न न होता हुआ भी प्रकृति से अनेक प्रकार के कार्य उत्पन्न कर देता है। कार्य को तथा उसकी योनि कारण रूप प्रकृति को धीर लोग देखते हैं। इस मन्त्र में प्रकृति का नाम योनि आया है। यथा :—

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादं।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परि-
पश्यन्ति धीराः ॥ मुं० १ । १ । ६ ॥

वह परमेश्वर अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र, अवर्ण, अनेत्र, अश्रोत्र पाणि तथा पाद से रहित है। नित्य सर्वव्यापक तथा सूक्ष्म विभु है,

यस्य भूतयोनिं यद्भूतयोनिं, उसकी भूतों की योनि अर्थात् प्रकृति को भी धीर लोग देखते हैं।

इन प्रमाणों से पाया जाता है कि प्रकृति का नाम योनि भी है इससे सिद्ध है कि संसार का उपादानकारण प्रकृति है।

जहां कहीं परमात्मा के लिये योनि शब्द आता है, वहां निमित्तकारण वा स्थान का वाचक आता है, क्योंकि ब्रह्म सब भूतों का स्थान है, यथा :—ऋ० १। १०४। १—

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान् दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥

हे राजन्! यह योनि स्थान राजसिंहासन आपके लिये बनाया है इस पर विराजिये तथा प्रजा की रक्षा कीजिये, अग्नि आदि के द्वारा विमानों का निर्माण कीजिये, इस मन्त्र में योनिशब्द स्थान का वाचक आया है।

सारांश

जैसे सृष्टि का निमित्तकारण परमेश्वर है वैसे ही उपादानकारण प्रकृति है इस बात को छः हेतुओं से महर्षि व्यास ने सिद्ध किया है।

प्रथम हेतु यह है कि वेद मन्त्रों में इस बात की प्रतिज्ञा है कि संसार की रचना परमात्मा ने प्रकृति से की है।

दूसरा हेतु यह है कि दृष्टान्त देकर प्रकृति को वेदों में सिद्ध

किया है, इसका यह भी अर्थ है कि संसार में ऐसा कोई भी दृष्टान्त नहीं पाया जाता है, जिससे यह सिद्ध हो कि निमित्तकारण वा उपादानकारण एक होता है इसके विपरीत जितने भी दृष्टान्त संसार में पाये जाते हैं. उन सब से यही सिद्ध होता है कि निमित्तकारण तथा उपादानकारण पृथक् २ होते हैं ।

तीसरा हेतु यह है कि परमात्मा ने ध्यान या ईक्षण पूर्वक संसार की रचना की इससे सिद्ध है, कि परमात्मा चेतन है तथा संसार के अवलोकन से यह सिद्ध है कि वह जड़ है इस लिये इसका उपादानकारण भी जड़ ही होना चाहिये ।

चौथा तु यह है कि साक्षात् जिससे कोई भी सन्देह का स्थान अवशिष्ट नहीं रहता ऐसा प्रकृति तथा परमात्मा का वेदों में वर्णन आता है ।

पांचवां हेतु यह बतलाया है कि परमात्मा की क्रिया से ही प्रकृति कार्यरूप से परिणत होती है, परमात्मा अपरिणामी होने से संसार रूप नहीं हो सकता ।

छटा हेतु यह है कि प्रकृति को योनि कारण नाम से वर्णन किया है ।

इन छः हेतुओं से यह सिद्ध है कि प्रकृति संसार का उपादानकारण है परमात्मा नहीं ।

शङ्का—श्री स्वामी शङ्कराचार्य जी ने इन सूत्रों से यह सिद्ध किया

है कि परमात्मा संसार का अभिन्न निमित्तोपादानकारण है अर्थात् वही संसार का निमित्तकारण तथा वही उपादान कारण है ।

समाधान—श्री स्वामी शङ्कराचार्य का सूत्रार्थ प्रमाण युक्ति से विरुद्ध है इसके लिये निम्न लिखित हेतु हैं—

१. जब शङ्कराचार्य के कहने के अनुसार 'जन्माद्यस्य यतः' सूत्र में भी परमात्मा को संसार का उपादानकारण बतलाया है निमित्तकारण नहीं, तो पुनः यह कहने की क्या आवश्यकता है कि ब्रह्म संसार का उपादान कारण भी है क्योंकि निमित्तकारण तो पीछे किसी सूत्र में बतलाया ही नहीं ।

२. नवीन वेदान्ती यह मानते हैं कि शुद्ध ब्रह्म जगत् का कारण नहीं किन्तु माया विशिष्ट ईश्वर संसार का कारण है व्यास जी ने ब्रह्म की जिज्ञासा के अनन्तर ब्रह्म ही का यह लक्षण किया है कि जो संसार की उत्पत्ति आदि करने वाला है, वह ब्रह्म है । इस लिये मायावादियों का ब्रह्म संसार का उपादान कारण नहीं हो सकता ।

(३) स्वामी जी ने यह लिखा है कि उपनिषद् में जो यह प्रतिज्ञा का दृष्टान्त आता है कि सौम्य ! जिसके जानने से सब जाना जाता है उसको जानो और दृष्टान्त यह है कि जैसे एक मृतपिण्ड के जानने से सब मिट्टी के विकार जान लिए जाते हैं । अतःब्रह्म संसार का उपादानकारण है क्योंकि निमित्तकारण होने से सब का ज्ञान नहीं हो सकता । हम को यह स्वामी की युक्ति विचित्र मालूम पड़ता है क्योंकि यहां श्रुति का तात्पर्य उपादानकारण वा निमित्तकारण का

विवेचन करना नहीं है। किन्तु यहां तो दृष्टान्त देकर यह बतलाया है कि जैसे मिट्टी के जानने से सब मिट्टी के विकार जान लिये जाते हैं। वैसे ही ब्रह्म के जानने से उसके सब गुण वा कार्य जान लिये जाते हैं यहां तो स्पष्ट यह लिखा है कि मिट्टी वा ब्रह्म अलग २ हैं। तथा इस प्रकरण में यह कहां लिखा है कि यह संसार सब ब्रह्म का विकार है, ब्रह्म ही सत्य है, तथा संसार मिथ्या है ? यदि यह उपसंहार नहीं तो दृष्टान्त किस काम का ? दूसरा भाव यह है कि एक प्रभु के जानने से सब कुछ जाना गया, पुनः कुछ जानना अवशिष्ट नहीं रहा। जिस ने ब्रह्म को जान लिया उस के लिये बाकी क्या रह गया। इस के यह अर्थ कदापि नहीं हैं कि ब्रह्म संसार का उपादान कारण है।

(४) ईक्षण पूर्वक कर्तृत्व निमित्त कारण में ही होता है उपादान में नहीं। संसार में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिलता, जिस से यह सिद्ध होता हो कि उपादान कारण में ईक्षण होता है।

(५) संसार में जो कार्य होता है उस में नियम से कर्ता उपादान आदि वस्तुएं अलग २ होती हैं। इस से भी सिद्ध है कि ब्रह्म वा प्रकृति भिन्न २ हैं।

(६) जैसे यह संसार परिणामी अशुद्ध जड़ तथा अनेक दोषों से दूषित हैं, इसका कारण भी वैसा ही होना चाहिये, किन्तु ब्रह्म इस के विपरीत—

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ॥

श्वे० ६।१६ ॥

अपरिणामी निरवयव होने से इस संसार का उपादानकारण नहीं हो सकता।

(७) संसार के प्रत्येक पदार्थ में अनेक अवयव दिखाई देते हैं। इस से सिद्ध है कि इस संसार का आदिकारण अनेक अवयव से युक्त है। ब्रह्म के निरवयव होने से वह इस संसार का उपादान कारण नहीं हो सकता।

न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात् ॥
२। १। ४॥

संसार के तथा ब्रह्म के परस्पर विलक्षण होने से ब्रह्म संसार का उपादान कारण नहीं हो सकता। ऐसा ही वेद में लिखा है—

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥
यजु० ४०। ४॥

प्रभु कम्पायमान नहीं होता, तथा संसार कम्पायमान है। ईश एक है तथा संसार में अनेकत्व है। उस की गति मन से भी आगे है संसार की नहीं, उसको इन्द्रियें नहीं जान सकतीं, किन्तु संसार को जानती हैं।

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माचिदस्य पर्वता भयन्ते ॥ ऋ० २। १२। १३॥

जिस के आगे द्युलोक तथा पृथिवी लोक झुकते हैं। जिस के बल से पर्वत भी कांपते हैं, जिसके वज्र रूपी दण्ड को कोई भी नहीं टाल सकता।

न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षः। यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीलु रुजति स्थिराणि ॥ ऋग्० १०।८९।६ ॥

प्रभु के क्रोध को द्युलोक, पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष, सोम, पर्वत आदि सहन नहीं कर सकते। परमेश्वर का प्रकोप बड़े २ स्थिर पदार्थों को चूर २ कर देता है।

न यस्य द्यावापृथिवी अनुव्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः। नोत स्ववृष्टिं मदेऽस्य युध्यत एकोऽन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥ ऋ० १।५२।१४ ॥

उस प्रभु की बराबरी द्युलोक, पृथिवी लोक, नहीं कर सकते। समुद्र भी उस के अन्त को नहीं पा सकते वह अकेला ही सम्पूर्ण संसार को बिना किसी की सहायता के निर्माण करता है। इत्यादि सैङ्कड़ों मन्त्रों में ब्रह्म तथा संसार की विलक्षणता का वर्णन आता है। यदि ब्रह्म तथा संसार एक ही हैं तब यह विलक्षणता कैसे रह सकती है? ब्रह्म शुद्ध तथा संसार अशुद्ध है। ब्रह्म चेतन तथा संसार जड़ है। ब्रह्म आनन्दस्वरूप तथा संसार दुःखमय है। ब्रह्म अपरिणामी तथा संसार परिवर्तनशील है। ब्रह्म स्वरूप से नित्य और संसार

परिणामी नित्य है। ब्रह्म स्वतन्त्र वा कार्य जगत् पराधीन है। ब्रह्म सर्वदेशी और संसार एकदेशी है। प्रभु अकार्य वा संसार कार्य है। इस विलक्षणता के होते हुए वेदान्तियों का ही साहस है जो संसार तथा ब्रह्म को एक मानते हैं, और ब्रह्म को संसार का उपादानकारण बतलाते हैं।

शङ्का—वैशेषिककार यह मानता है, कि जो गुण कारण में होता है वही कार्य में होता है, परन्तु यह बात उनके अपने ही सिद्धान्त के प्रतिकूल है। परमाणु का परिमाण अणु है, किन्तु उससे दीर्घ, महत् आदि परिमाण उत्पन्न होते हैं, यदि कारणगुणपूर्वक कार्य के गुण होते हैं तब अणु से अणु ही उत्पन्न होना चाहिए।

समाधान—वैशेषिक में यह लिखा है, कि गुण गुणों का आरम्भ करते हैं, इस सिद्धान्त के अनुसार जो परमाणुगत अणु परिमाण है उस से दीर्घादि परिमाणों की उत्पत्ति होती है। परिमाणत्वेन सब परिमाणों का समानजातीयत्व सिद्ध है। दूसरी बात यह है कि कारणगत बहुत्व भी महत् परिमाण का उत्पादक है बहुत्व भी गुण होने से महत्त्व के साथ समानता रखता है। अतः कारणगुणपूर्वक कार्य का गुण होता है, इस सिद्धान्त को कोई भी क्षति नहीं है, यह बात बुद्धि से भी सिद्ध है कि जब एक अणु आकाश को घेरता है, तब दो अणु मिलकर अधिक आकाश को घेरेंगे, इस प्रकार अनेक अणुओं के मिलने से महत्परिमाण उत्पन्न हो जायगा।

शङ्का—स्वामी शङ्कराचार्य ने लिखा है कि जैसे चेतन शरीर से

केश, नख तथा गोबर से बिच्छु उत्पन्न होते हैं, वैसे ही चेतन ब्रह्म से जड़ संसार की उत्पत्ति होती है।

समाधान—यह स्वामी का दृष्टान्त विषम है क्योंकि जड़ शरीर से जड़ केश, नख तथा जड़ गोबर से बिच्छु के जड़ शरीर की उत्पत्ति होती है चेतन की नहीं।

शङ्का—जो संसार के ब्रह्म से विलक्षण बतलाते हैं, क्या वे सम्पूर्ण ब्रह्म के गुणों से संसार को विलक्षण कहते हैं, या किसी एक गुण को लेकर। यदि कहें कि उपादानकारण के सम्पूर्ण गुण कार्य में आने चाहिये तब संसार का ही उच्छेद हो जायेगा, क्योंकि यदि कार्य कारण की कुछ भी विलक्षणता न हो तब कार्यकारण भाव ही नहीं हो सकता। यदि किसी एक गुण से प्रयोजन हो तो सत्ता रूपी समानता ब्रह्म तथा आकाशादि पदार्थों में पाई जाती है ब्रह्म भी सत्ता वाला है, तथा आकाश भी, सत्ता का होना दोनों की समानता है।

समाधान—यह भी शङ्करका दृष्टान्त ठीक नहीं क्योंकि एक वे धर्म होते हैं जिनमें अनेक पदार्थों की समानता होती है, तथा एक वे धर्म होते हैं जिनमें पदार्थों का परस्पर भेद होता है, इन्हीं धर्मों को पदार्थों के लक्षण कहते हैं, सत्ता जड़ तथा चेतन सब वस्तुओं में समानता पाई जाती है, तथा चेतनता वा आनन्द गुण ब्रह्म को जड़ चीजों से अलग करने वाले हैं। यदि संसार ब्रह्म का कार्य होता तब ये दोनों गुण संसार में होने चाहिये थे, किन्तु ये दोनों ही संसार में नहीं हैं, अतः संसार का उपादानकारण ब्रह्म नहीं किन्तु जड़ प्रकृति है।

तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्य : ॥ वे० २ । १ । १४ ॥

आरम्भण आदि शब्दों से पाया जाता है कि संसार की तथा इसके कारण प्रकृति की अनन्यता है अर्थात् जो गुण प्रकृति में हैं, वेही संसार में हैं, यदि ब्रह्म संसार का उपादानकारण होता तो उसमें तथा संसार में एकता होती किन्तु ऐसा नहीं है। इससे सिद्ध है कि ब्रह्म संसार का उपादान कारण नहीं।

किंस्विदासीदधिष्ठानमारम्भं कतमत् स्वित् कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन् महिना विश्वचक्षः
॥ य० । १७ । १८ ॥

उवट भाष्यं

अधितिष्ठन्त्यस्मिन्नित्यधिष्ठानमधिकरणं विश्वकर्मणा द्यावापृथिव्यौ सृष्टे। अधिष्ठानरहिता इदानीं जनाः कर्तारो न किञ्चिदपि कुर्वाणा दृश्यन्ते। आरभ्यते अस्मादित्यारम्भणं प्रकृतिद्रव्यं मृद्द्रव्यमिव घटादीनां कथमासीत्। कथासीत् कथं भूता च तत्र क्रिया आसीत्। चक्रसूत्रसलिलादिभिर्हि घटादयो निष्पाद्यन्ते ॥

अर्थ—जिसमें सब ठहरते हैं वह अधिष्ठान अधिकरण है, विश्वकर्मा भगवान् ने विना अधिष्ठान के संसार की रचना की है, वह स्वयं

सबका अधिष्ठान है, इस समय बिना अधिष्ठान के कोई भी कार्य की रचना नहीं कर सकता। आरम्भण नाम प्रकृति का है क्योंकि प्रकृति ही कार्य का रूप धारण करती है जैसे घड़े का उपादानकारण मट्टी तथा निमित्तकारण कुम्भकार तथा साधारण कारण चक्र आदि होते हैं, वैसे ही संसार का निमित्तकारण परमात्मा तथा उपादानकारण प्रकृति है। यहां स्पष्ट उवट ने भी परमात्मा से भिन्न प्रकृति की सत्ता स्वीकार की है।

शङ्का—स्वामी शङ्कराचार्य ने इस सूत्र से यह सिद्ध किया है कि ब्रह्म तथा संसार अनन्य अर्थात् कार्यकारण भाव से एक ही हैं क्योंकि श्रुतियों से यह सिद्ध है कि संसार का उपादानकारण ब्रह्म है।

समाधान—स्वामी शङ्कर का भी कोई ठिकाना नहीं, सैंकड़ों सूत्रों में सिद्ध किया है कि प्रकृति संसार का निमित्तकारण नहीं, क्योंकि वह जड़ है। यहां लिखते हैं कि जैसे कार्य वा कारण में भेद नहीं होता, एक ही होता है, वैसे ही संसार ब्रह्म का कार्य होने से एक ही हैं। जब संसार तथा ब्रह्म एक ही हैं तब प्रकृति के निषेध की क्या आवश्यकता है, वह भी तो ब्रह्म है तथा संसार को स्वप्नवत् मिथ्या सिद्ध करने के क्या अर्थ हैं, वह भी तो ब्रह्मस्वरूप ही है। कहीं संसार को ब्रह्म का परिणाम माना है। सत्य है, जिसका आधार ही अविद्या पर निर्भर हो उसमें एक स्थिर सिद्धान्त कैसे हो सकता है, जब संसार तथा ब्रह्म एक ही हैं तब संसार में ब्रह्म के अदृश्यादि धर्म, ब्रह्ममें संसार के अशुद्धि आदि धर्मों को कौन टाल सकता है? अतः शङ्कर मत अत्यन्त त्याज्य है।

कृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा ॥ २ । १ २६ ॥

यदि ब्रह्म को संसार का उपादानकारण मानें तो ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा मानने से सम्पूर्ण ब्रह्म ही संसाररूप होने से दूषित वा विकारमय हो जायगा। यदि कहो कि ब्रह्म का एक देश संसार का रूप धारण करता है, तब भी ठीक नहीं क्योंकि ऐसा करने से निरवयव ब्रह्म को सावयव मानना पड़ेगा। तथा सावयव मानने से विकारी वा अनित्य ठहरेगा और ब्रह्म के अनेक परमाणु मानने पड़ेंगे तब यह प्रश्न होगा कि अनेक परमाणुओं के समूह का नाम ब्रह्म है या उनसे मिलकर एक आकृति बनती है उसका नाम ईश्वर है, या प्रत्येक परमाणु का नाम ब्रह्म है। यदि कहो कि समूह का नाम ब्रह्म है तो उसको एक कहना ठीक नहीं यदि उनसे निर्मित आकृति का नाम ब्रह्म है तो उसका निर्माण किसने किया ? यदि प्रत्येक परमाणु का नाम ब्रह्म है, तब अनन्त ब्रह्म हो जायेंगे, जैसे २ विचारा जाता है वैसे २ युक्ति के आगे किसी प्रकार भी यह ब्रह्मोपादान कारणवाद नहीं ठहर सकता।

असद्व्यपदेशान्नेति चेन्न धर्मान्तरेण वाक्यशेषात् ॥ २ । १ १७ ॥

युक्तेः शब्दान्तराच्च ॥ २।१।१८ ॥

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में स्पष्ट यह लिखा है कि संसार की उत्पत्ति से पूर्व प्रकृति, परमाणु, आकाश, मृत्यु, अमृत, रात्रि, दिन आदि कोई भी पदार्थ विद्यमान नहीं था, पुनः प्रकृति की सत्ता कैसे

भी पदार्थ विद्यमान नहीं था, पुनः प्रकृति की सत्ता कैसे हो सकती है, यदि ऐसा कहो तो ठीक नहीं, क्योंकि सूत्र के सब मन्त्र तथा सब शब्दों के विचार से परमात्मा, प्रकृति, जीवात्मा तथा उनके शुभाशुभ कर्म सब सिद्ध होते हैं। नीचे सम्पूर्ण सूक्त का विचार किया जाता है—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरोयत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥

ऋ० १० । १२६। १ ॥

कार्य सृष्टि उत्पन्न होने से पूर्व असत् अभाव नहीं था तथा सत व्यक्त कार्य नहीं था, रज तथा व्योम नहीं था। किन्तु जैसे आकाश में कोहरा फैला होता है वैसे ही सब स्थान पर परमाणु फैले हुए थे।

कतिपय जन इस मन्त्र से यह सिद्ध किया करते हैं कि सृष्टि के पूर्व प्रकृति आदि कोई पदार्थ नहीं था। यह कल्पना उन की अशुद्ध है। हेतु नीचे दिये जाते हैं—

१. इस सूक्त का देवता भाववृत्त है अभाववृत्त नहीं। सायण ने देवता के विषय में लिखा है—

वियदादिभावानां सृष्टिस्थितिप्रलयादीनामत्र प्रतिपाद्यत्वात् तेषां कर्ता परमात्मा देवता ।

आकाश आदि भाव पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय का प्रतिपादन होने से उनका कर्ता परमात्मा इस सूक्त का देवता-विषय

है। जब सूक्त का विषय भाव है तब उस से यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि सृष्टि से पूर्व प्रकृति का अभाव था ?

२. जब यह कह दिया कि असत् नहीं था तब यह सुतरां सिद्ध होगया कि सत् था, पुनः यह कहने के क्या अर्थ हैं कि सत् भी नहीं था या सत् था, या असत्। अतः इसके यह अर्थ हैं कि कारणरूप से अव्यक्त संसार था तथा कर्मरूप से व्यक्त संसार नहीं था।

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम् ।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम् ॥

सा० का० १० ॥

जो कार्य अनित्य अव्यापक सक्रिय अनेक द्रव्यों के आश्रित सावयव परतन्त्र है वह व्यक्त तथा इस के विपरीत जिसका कोई कारण न हो जो नित्य हो, व्यापि निष्क्रिय निरवयव आदि गुणों से युक्त हो वह अव्यक्त है।

३. मन्त्र में स्वयं यह कहा है कि कोहरे की तरह एक पदार्थ सर्वत्र फैला हुआ था पुनः यह नहीं हो सकता कि असत् था।

४. तद्व्यवहारस्यावर्तमानाभावात् ॥

श्री स्वमी दयानन्द जी महाराज ने लिखा है कि निषेध का भाव यह है कि उनका व्यवहार नहीं था जैसे कोई कहे कि देवदत्त वहां नहीं है, इस के अर्थ यह नहीं कि देवदत्त है ही नहीं, इसी प्रकार यहां कहा है कि उस समय व्यवहार नहीं था।

५. अगले मन्त्रों में स्वयं प्रकृति, आकाश आदि की सत्ता का प्रतिपादन किया है अतः इस सूक्त से अभाव सिद्ध नहीं होता किन्तु भाव ही सिद्ध होता है।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रेकतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परःकिञ्चनास ॥२॥

उस समय मृत्यु नहीं था, न मरना भी नहीं था, रात तथा दिन व्यक्त नहीं थे, बिना वायु के जीवित प्रकृति सहित ब्रह्म था, उस से बड़ा कुछ नहीं था।

शङ्का—इस में स्पष्ट लिखा है कि ब्रह्म के सिवाय और कोई पदार्थ नहीं था। इस से शङ्कर का अद्वैतवाद सिद्ध होता है।
समाधान—'परो दिवा पर एना पृथिव्या,' इत्यादि मन्त्रों में 'पर' के अर्थ उत्कृष्ट के स्वयं वेद करता है यहां भी यही अर्थ है कि परमात्मा से बड़ा दूसरा कोई पदार्थ नहीं था इस के यह कदापि अर्थ नहीं हैं कि परमात्मा से बिना दूसरा कोई पदार्थ नहीं था।

२. स्वधा का अर्थ सायण करते हैं—

स्वस्मिन् धीयते ध्रियत आश्रित्य वर्तत इति स्वधा माया।

जो परमात्मा के आधार से रहती है वह माया प्रकृति स्वधा है।
मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम् ॥ श्वे० ॥४।१०॥
माया प्रकृति है। इस से सिद्ध है कि सृष्टि से पूर्व प्रकृति संसार

का उपादान कारण विद्यमान था।

२. रात्रि तथा दिन प्रकेत-व्यक्त नहीं थे। यहां भी रात का अभाव नहीं बतलाया किन्तु कारणरूप से भाव माना है।

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदं।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥ ३ ॥

सायण कहते हैं :—

अग्रे सृष्टेः प्राक् प्रलयदशायां भूतभौतिकं सर्वं जगत्तमसा गूढं। यथा नैशं तमः सर्वपदार्थजातमावृणोति तद्वत्। आत्मतत्त्वस्यावरकत्वात् मायापरसंज्ञं भावरूपाज्ञानमत्र तम इत्युच्यते। निगूढं संवृतं तेन तमसा कारणभूतेन आच्छादितं भवति ॥

प्रलय अवस्था में भूत भौतिक सम्पूर्ण जगत् तम अर्थात् माया प्रकृति से आच्छादित था। जैसे रात्रि का अन्धकार सब पदार्थों को ढक लेता है, वैसे ही सब पदार्थ माया से ढके हुए थे। यहां स्पष्ट सायण ने भी कारणरूप से सब पदार्थों का अस्तित्व माना है।

२. अप्रकेत सलिल का भी यही अर्थ है कि अव्यक्त रूप से परमाणु सर्वत्र फैले हुए थे।

३. तुच्छयेन परमाणुओं से अभ्व आकाश सर्वत्र ढका हुआ

था। तम से तम ढका हुआ था, यह उसकी व्याख्या है। इस मन्त्र में साफ़ शब्दों में परमाणु तथा आकाश की सत्ता को माना है :—

इस मन्त्र पर मनु जी कहते हैं :—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणं ।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ १ । ५ ॥

यह संसार अन्धकार से ढका हुआ था। अप्रज्ञात, अलक्षण, अप्रतर्क्य, अनिर्देश्य, चारों तरफ से सोए हुए की तरह था। सोए हुए मनुष्य में मन इन्द्रिय प्राण आत्मा आदि सब पदार्थ विद्यमान होते हैं, केवल उनका कार्य नहीं होता, इसी प्रकार यह संसार भी अपने प्रकृति रूपी कारण में लीन था। यह अव्यक्त का लक्षण है। स्वामी जी ने ठीक कहा है कि उसका व्यवहार नहीं था।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥
॥ ४ ॥

सायणभाष्य-सारांश

अस्य विकारजातस्य सृष्टेः प्रागवस्थायां परमेश्वरस्य मनसि कामः सिसृक्षा आसीत्, ईश्वरस्य सिसृक्षा किं हेतुका मनसो रेतः बीजभूतं अतीते कल्पे प्राणिभिःकृतं पुण्यात्मकं कर्म

सर्वस्य जगतो बन्धुं बन्धकं हेतुभूतं कल्पान्तरे प्राणी अनुष्ठितं कर्म समूहम् ॥

कार्यं संसार के उत्पन्न होने से प्रथम परमात्मा के अन्दर कार्य संसार के रचने की इच्छा थी. क्योंकि प्रथम कल्प में जो जीवों के कर्म अवशिष्ट रह गये थे उनका परमेश्वर ने अपनी न्यायव्यवस्था के अनुसार फल देना था। इस मन्त्र में स्पष्ट कर दिया गया है, कि संसार को रचने से पूर्व जीवों के कर्म भी विद्यमान थे।

रेतोधा आसन् महिमान आसन्,
स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात् ॥ ५ ॥

सायण

रेतोधा रेतसो बीजभूतस्य कर्मणो विधातारः कर्तारो भोक्तारश्च जीवा आसन् अन्ये भावा वियदादयो भोग्या आसन् ॥

बीजभूत कर्म के धारण तथा करने वाले वा भोक्ता जीव भी विद्यमान थे, तथा आकाशादि भोग्य के साधन भावरूप पदार्थ भी थे। इस मन्त्र में यह बात सुन्दर रीत्या सायण ने भी स्वीकार की है कि प्रलय अवस्था में जीव तथा आकाशादि पदार्थ विद्यमान थे।

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः
अर्वाग् देवस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥ ६ ॥

सायण

कुतः कस्मात् उपादानकारणात् कुतः कस्माच्चकारणात् ।

यह संसार किस उपादानकारण वा किस निमित्तकारण से उत्पन्न हुआ है, इसको कौन जानता है, क्योंकि इन्द्रियें पश्चात् कार्य जगत् में उत्पन्न हुई हैं । यहां मन्त्र में उपादानकारण तथा निमित्तकारण की सत्ता को स्वीकार करते हुए संसार की अव्यक्त सत्ता का वर्णन किया है ।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥
॥ ७ ॥

यह संसार जिस उपादानकारण से उत्पन्न हुआ है, उसको इसका अध्यक्ष परमेश्वर जानता है, उसी ने वेद के द्वारा उस संसार की अव्यक्तावस्था का उपदेश जीवों को दिया है ।

इसी प्रकार से इस संसार के बनाने की सामग्री ईश्वर, प्रकृति, जीव तथा उनके कर्म आदि सब आवश्यक बातों का वर्णन नासदीय सूक्त में आगया है । इस लिये व्यास जी महाराज अपने वेदान्त सूत्रों के द्वारा यह बात बतलाते हैं कि सूक्त के सम्पूर्ण मनन से संसार का अभाव सिद्ध नहीं होता, किन्तु भाव ही सिद्ध होता है ।

पटवच्च ॥ २ । १ । १६ ॥

जैसे खद्दर का थान लेकर यदि कोई प्रश्न करे कि बतलाओ इसमें धोती, कुरता, पाजामा, तौलिया आदि वस्तुएं हैं या नहीं। यदि कहे हां, तब थानसे पाजामे आदि का कार्य नहीं कर सकते, यदि निषेध करे तब पुनः बन कैसे जाते हैं। अतः यही यथार्थ उत्तर है कि धोती आदि हैं भी तथा नहीं भी। कार्य रूप से नहीं है, कारण रूप से हैं, इसी प्रकार की योजना नासदीय सूक्त में है।

इस प्रकार विस्तार से महर्षि व्यास ने वेदान्त सूत्रों में संसार के उपादानकारण प्रकृति का वर्णन किया है।

सांख्य

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः
प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्च—
तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूल—
भूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिगणः॥ १ । ६१ ॥

सत्त्व' रज तथा तम की साम्यावस्था, समान स्थिति का नाम प्रकृति है उससे महान्, महान् से अहङ्कार, अहङ्कार से पांच तन्मात्रा आन्तरिक तथा बाह्य इन्द्रियें, तन्मात्राओं से स्थूल भूत और पुरुष। यह २५ वस्तुओं का गण है।

यहां सांख्य शास्त्रकार ने प्रकृति की सत्ता स्वीकार की है।

योग

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥२।१८॥

व्यासभाष्य

प्रकाशशीलं सत्त्वं, क्रियाशीलं रजः, स्थितिशीलं तमः । एते गुणाः परिणामिनः संयोगविभागधर्माणः सन्निधिमात्रोपकारिणः अयस्कान्तमणिकल्पाः प्रधानशब्दवाच्या भवन्ति एतद्दृश्यम् ॥

इन्हीं सत्त्व रज तम परिणामी संयोग विभाग धर्म वाले गुणों को प्रधान प्रकृति कहते हैं ।

इसी सूत्र में महाराज पतञ्जलि जी ने प्रकृति की सत्ता मानी है ।

न्याय

परं वा त्रुटेः ॥४।२।१७॥

इस सूत्र में गौतम जी ने प्रकृति को नित्य स्वीकार किया है ।

वैशेषिक

सदकारणवन्नित्यम् ॥४।१।१॥

जो वस्तु सत्ता वाली तथा किसी से जन्य न हो वह नित्य है ।

तस्य कार्यं लिङ्गम् ॥ ४ । १ । २ ॥

नित्य प्रकृति के होने में उसका कार्य प्रमाण है अर्थात् कार्यजगत् को देख कर उससे कारण प्रकृति का अनुमान होता है।

नित्यं परिमण्डलम् ॥

परमाणु परिमाण नित्य है क्योंकि उसके आश्रयभूत परमाणु नित्य हैं। इस प्रकार महर्षि कणाद ने परमाणुओं को नित्य माना है।

उपर्युक्त प्रमाण से सिद्ध है कि इस जगत् के सूक्ष्म कारण प्रकृति को सब दर्शनकार मानते हैं, इसमें उनका कोई विरोध नहीं।

शङ्का—प्रकृति तथा परमाणुओं को एक कहना ठीक नहीं। परमाणुओं का लक्षण अन्य है, प्रकृति का दूसरा, यही दर्शनों में मतभेद है. सांख्य प्रकृति को संसार का उपादानकारण मानता है, तथा न्याय वा वैशेषिक परमाणुओं को जगत् का कारण मानते हैं।

१. समाधान—यह भी नवीन दार्शनिकों की लीला है कि प्रकृति भिन्न है तथा परमाणु भिन्न हैं यदि विचार से देखा जावे तब दोनों एक ही हैं। परमाणुओं का लक्षण यह है—

सावयवानां द्रव्याणां विभज्यमानानां यतः परो विभागो नास्ति ते परमाणवः ।

सावयव द्रव्यों का विभाग करते २ जब ऐसी अवस्था आजावे कि जिसके आगे विभाग न हो सके उसको परमाणु कहते हैं। जब

तक पदार्थों में अवयवावयवी भाव रहेगा, तब तक उनका विभाग होता जायगा, जब यह भाव निवृत्त हो जायगा, केवल अवयव अवशिष्ट रहेंगे तब उनके खण्ड नहीं होंगे। इसी अवस्था को परमाणु कहते हैं, जब तक अवयवावयवी भाव पदार्थों में विद्यमान है, तब तक इनकी साम्यावस्था नहीं हो सकती क्योंकि किसी में अधिक अवयव हैं, किसी में न्यून जब यह न्यूनाधिक भाव दूर होगा तभी परमाणुओं की साम्यावस्था होगी, इसी समानावस्था का नाम सांख्य में प्रकृति आता है, तथा न्याय वैशेषिक में इस को परमाणु कहते हैं, परमाणु का अर्थ भी साम्यावस्था है, क्योंकि जब तक कार्यजगत् अपनी वास्तविक अवस्था में न जावे तब तक उसमें विषमता बनी ही रहेगी। इसी बात को महर्षि गौतम कहते हैं :—

अवयवावयवीभाव आप्रलयात् ।

प्रलय तक पदार्थों में अवयवावयवी भाव रहेगा।

शङ्का—प्रकृति एक पदार्थ है तथा परमाणु अनेक, पुनः प्रकृति परमाणु एक कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—प्रकृति को एक पदार्थ कहना मूर्खता है, क्योंकि प्रकृति नाम भी तो सत्, रज, तम अनेक पदार्थों के समान सम्पात का है।

शङ्का—सत, रज, तम तीन हैं, वैशेषिक में पांच तत्व माने हैं, पुनः प्रकृति परमाणुओं की एकता कैसे होगी ?

समाधान—सत्व का अर्थ है प्रकाश, प्रकाश शब्द से अग्नि तथा आकाश का ग्रहण है। क्योंकि आकाश प्रकाश को पहुंचाने वाला है। रज से वायु का ग्रहण है क्योंकि वह विशेष क्रियाशील है। तम से पृथिवी वा जल का ग्रहण है क्योंकि उन में आवरणशक्ति अधिक है तथा तेज के आवरण ही का नाम तम है। इस प्रकार गुण वा भूत एक ही हैं।

शङ्का—वैशेषिक में गुण भिन्न माने हैं, द्रव्य भिन्न, पुनः सत्वादि गुण द्रव्य कैसे हो जायेंगे ?

शास्त्रों की अपनी कतिपय परिभाषायें भिन्न २ होती हैं। यथा व्याकरण में 'अदेङ् गुणः' 'अ' अक्षर तथा 'ए' अक्षर की गुण संज्ञा है। वैशेषिक में बुद्धि आदि को गुण कहते हैं, वैसे सांख्य में सत्वादि द्रव्य को गुण कहते हैं।

समाधान—सत्व, रज, तम वैशेषिक में बतलाये गुण नहीं, किन्तु द्रव्य हैं, क्योंकि वैशेषिक का सिद्धान्त है—
'गुणो गुणानङ्गीकारात्' गुणों में गुण नहीं होते, किन्तु सांख्य वाले मानते हैं—

सत्वं लघुप्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः गुरुवरणकमेव तमः ॥

सत्व में लघुता तथा प्रकाश है। रज में उद्योतक वा चलने की शक्ति है। तम में भारी वा ढकने की शक्ति है। इस प्रकार सत्वादि

में गुण मानने से यह सिद्ध है कि ये द्रव्य हैं यही बात विज्ञानभिक्षु ने सांख्य का भाष्य करते हुए लिखा है—'सत्वादीनि द्रव्याणि न तु वैशेषिका गुणाः सत्वादि द्रव्य हैं वैशेषिक प्रतिपादित गुण नहीं।

शङ्का--यदि ये गुण नहीं तब इन को गुण क्यों कहा जाता है ?

समाधान—गुण नाम रस्सी का भी है। जैसे रस्सी बान्धने का कार्य करती है वैसे ही सत्वादि पुरुष को बान्धते हैं। अतः इन को गुण कहते हैं।

शङ्का—क्या कहीं योग वा सांख्य में परमाणुओं की सत्ता को स्वीकार किया है ?

समाधान—प्रथम बात तो यह है कि सांख्य तथा योग में जिस को प्रकृति के नाम से कहते हैं वही परमाणु हैं, दूसरे योग में लिखा है—योग० १।४० ॥

परमाणु परममहत्त्वान्तोस्य वशीकारः ॥

परमाणु तथा परममहत् तथा योगी का वशीकार है। परममहत् परिमाण भी नित्य होता है तथा परमाणु भी नित्य होता है। पतञ्जलि महाराज उससे आगे भौतिक सत्ता नहीं मानते। इस से स्पष्ट सिद्ध है कि वे परमाणु को नित्य मानते हैं।

शङ्का—**नाणुनित्यता तत्कार्यत्वश्रुतेः ॥**

सां० ५।८७ ॥

अणु नित्य नहीं क्योंकि श्रुति में उसको कार्य बतलाया है। इस से सिद्ध है कि सांख्य परमाणु को अनित्य मानता है।

समाधान—अणु को अनित्य माना है किन्तु परमाणु को अनित्य कहां माना है? वैशेषिक तो परमाणु को नित्य मानता है। ६० परमाणुओं का एक अणु होता है।

शङ्का—परमाणुओं की सत्ता तथा उन की नित्यता में क्या प्रमाण है? जब तक प्रमाण न हो उनकी नित्यता वा सत्यता स्वीकार नहीं कर सकते।

समाधान—प्रत्येक पदार्थ की बनावट या उस के टुकड़े करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हरेक पदार्थ अनेक अवयवों से बना हुआ है किसी एकरस एक अवयव से नहीं, उदाहरण के लिये यदि एक तिल के दाने को लेकर उसके टुकड़े किये जावें तो वह कई भागों में विभक्त हो जावेगा। अन्त में एक ऐसी अवस्था आएगी जिस के आगे उसके टुकडे नहीं हो सकते। उसी को परमाणु कहते हैं।

शङ्का—ऐसा क्यों न माना जावे कि टुकड़े होते २ अन्त में उस वस्तु का अभाव हो जावेगा, जिसको परमाणु कहते हैं। वह भी शून्य में परिणत हो जावेगी।

समाधान—यह प्रत्यक्ष से सिद्ध है कि तिल के टुकड़े होते हैं। तथा टुकड़ो का अर्थ यही है कि इस में अवयव मिले हुए हैं। इन संयुक्त अवयवों का बिभाजन ही टुकड़े हैं। यदि इस अवयवावयवी विभाग को अनन्त माना जावेगा तो ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा होनेसे

एक तो अनवस्थादोष आवेगा। दूसरी बात यह है कि यदि तिल के दाने के अवयवों में संख्या नियत न मानी जावे, तब इस के यह अर्थ हैं कि उस में अनन्त अवयव हैं, यदि अनन्त अवयव हैं तब पुनः तिल तथा पर्वत के गुरुत्व भार परिमाण में कोई भेद नहीं होना चाहिये क्योंकि तिल में भी अनन्त अवयव हैं, तथा पर्वत में भी अनन्त अवयव हैं। जब दोनों में अनन्त अवयव हैं तब पर्वत इतना भारी वा बड़ा क्यों है तथा तिल इतना छोटा वा हलका क्यों है क्योंकि दोनों ही अनन्त अवयवों से बने हुए हैं इस लिये यह मानना पड़ेगा कि तिल वा पर्वत के परमाणुओं की संख्या नियत है, बस इसी संख्यायुक्त द्रव्यों को परमाणु कहते हैं। वे निरवयव वा नित्य हैं।

(२) संसार में यथार्थ में दो ही परिमाण हैं एक अणु, दूसरा महत् बड़ा, इन दोनों में ही तारतम्य है।

तिल से चना बड़ा, चने से मनुष्य बड़ा है, मनुष्य से हाथी बड़ा है, हाथी से पर्वत, पर्वत से पृथिवी, पृथिवी से सूर्य। इस प्रकार यह महत् परिमाण का क्रम परमात्मा में जाकर समाप्त हो जाता है। परमात्मा में परम महत् परिमाण है, उस से बड़ा संसार में कोई भी पदार्थ नहीं है। वह परममहत् परिमाण नित्य है। इसी प्रकार अणु छोटे का क्रम चलता है। यह क्रम भी परमाणु में जाकर समाप्त हो जाता है जैसे परमात्मा महत् परिमाण नित्य है। वैसे ही परम अणु परिमाण भी नित्य है इस से भी सिद्ध है कि परमाणु नित्य हैं।

नाशः कारणलयः

किसी वस्तु का अपने कारण में लीन हो जाना ही नाश है।

अभाव का नाम नाश नहीं। किसी वस्तु को ले कर उसके टुकड़े करने से उस के अवयवों की संख्या उत्तरोत्तर अधिक होती है न्यून नहीं अतः परमाणु एक भाव पदार्थ है जो भाव पदार्थ होता है उसका सर्वथा अभाव नहीं हो सकता।

(४) किसी वस्तु का नाश कारण के विभाग से या कारण के अभाव से हो सकता है, तीसरी कोई गति नहीं है। कारण विभाग से परमाणुओं का नाश नहीं हो सकता। क्योंकि उनका कारण है ही नहीं। अभाव से भी नहीं, क्योंकि सत् वस्तु का अभाव नहीं होता, यदि कहो कि घी के पिघलने की तरह नाश होजायगा। यह भी ठीक नहीं, क्योंकि घी का पिघलना भी कारण द्रव्यों का विभाग ही है।

(५) नाश उसी वस्तु का होता है जो किसी कारण से बनी हो जब परमाणु किसी कारण से बने ही नहीं तब उनका नाश कैसे हो सकता है? यदि कहो कि परमाणु का भी कारण है तब ठीक नहीं क्योंकि परमाणु है ही वह जिसका कोई कारण नहीं।

(६) परमाणु अनित्य है इस शब्द से भी सिद्ध है कि परमाणु नित्य है क्योंकि यदि नित्य कोई वस्तु नहीं है तब उसका निषेध कैसा? इस से भी सिद्ध है, कि परमाणु नित्य है।

शङ्का—सृष्टि की उत्पत्ति के समय एक परमाणु का संयोग दूसरे परमाणु के साथ सर्वात्मना होता है, वा एकदेश से? यदि कहो सर्वात्मना होता है तब सब संसार परमाणुमात्र होजायगा।

यदि कहो एकदेश से होता है तब परमाणुओं के देश होने से वे सावयव सिद्ध हो जायेंगे। जो वस्तु सावयव होती है वह अनित्य होती है।

समाधान—परमाणु का संयोग न सर्वात्मना होता है न एकदेश से, किन्तु आत्मना होता है। परमाणु आकाश को घेरता है जो वस्तु आकाश को घेरती है, जब वे अनेक मिलेंगी तब अधिक आकाश के घेरने से पृथिवी आदि की उत्पत्ति होजायगी।

(२) परमाणुओं का परस्पर संयोग होता है यह कोई नियम नहीं है कि जिन वस्तुओं का परस्पर सयोग होवे वे अनित्य हों। यदि ऐसा माना जावे, तब परमात्मा भी अनित्य होजायगा, क्योंकि उसका सब वस्तुओं के साथ सम्बन्ध है।

(३) देश के अर्थ सत्ता के हैं या सावयव के? यदि कहो कि सत्ता के, तब परमाणु की भी सत्ता है, जैसे परमात्मा की सत्ता होने पर वह नित्य है, वैसे ही परमाणु भी स्वरूप से सत्तावान् होने पर भी नित्य है। यदि देश के अर्थ सावयव के है तब ठीक नहीं क्योंकि परमाणु का अर्थ ही निरवयव है सावयव नहीं।

शङ्का—परमाणु प्रवृत्तिस्वभाव वाले हैं, या निवृत्ति स्वभाव वाले हैं या दोनों स्वभाव वाले हैं या दोनों स्वभावों से रहित हैं? यदि प्रवृत्ति वाले हैं, तब प्रलय नहीं होगी यदि दोनों स्वभाव वाले हैं तब विरोध होने से रचना नहीं होगी यदि उभय स्वभाव वाले हैं तब भी रचना नहीं होगी।

समाधान—यह शङ्का उन नास्तिकों के विषय में हो सकती है जो जड़ कारणवादी हैं, परमात्मा की सत्ता को नहीं मानते। परमाणुवादी यह नहीं मानते कि सृष्टि की रचना परमाणु बिना किसी की सहायता के स्वयं करते हैं किन्तु उनका सिद्धान्त है कि परमात्मा परमाणुओं की सहायता से संसार की रचना करता है। अतः यह शङ्का अनुचित है।

शङ्का—जितने रूपादि वाले पदार्थ हैं वे अनित्य हैं, इसी प्रकार परमाणु भी रूपादि वाले हैं अतः वे भी अनित्य हैं।

समाधान—कुछ धर्मों के मिलने से दो वस्तु एक नहीं हो सकतीं। पशुओं में भी नेत्रादि इन्द्रियें हैं तथा मनुष्यों में भी इसका यह अर्थ नहीं है कि पशु वा मनुष्य एक ही हैं ऐसे ही कार्य जगत् के वा कारणजगत् के कुछ धर्म मिलने से यह सिद्ध नहीं हो जाता कि कार्य की तरह परमाणु भी अनित्य हैं। कार्य इस लिये अनित्य नहीं कि वे रूपादि वाले हैं, किन्तु इस लिये अनित्य हैं, कि वे कार्य हैं।

शङ्का—परमाणु के साथ छः दिशाओं का सम्बन्ध होने से परमाणु के छः देश सिद्ध हो जायेंगे, तथा प्रदेश के सिद्ध होने से परमाणु अनित्य सिद्ध हो जायगा।

समाधान—किसी के साथ सम्बन्ध मात्र से किसी वस्तु के प्रदेश सिद्ध नहीं हो सकते, परमात्मा का दिशादि सब वस्तुओं के साथ सम्बन्ध है, क्या इसके यह अर्थ हैं, कि परमात्मा अनित्य

है, शङ्कर भी अन्तःकारण के साथ ब्रह्म का सम्बन्ध मानता है, तथा घटाकाश की तरह घिरा हुआ मानता है, पुनः सम्बन्ध मात्र से वा आवृत होने से परमात्मा के भी प्रदेश मानने पड़ेंगे। अतः प्रदेश वा नाश उस वस्तु का होगा, जो किसी कारण से बनी होगी जब परमाणु किसी कारण से नहीं बने तब उनका नाश वा प्रदेश कैसा ?

गुरुत्व परिच्छिन्न आकार वाली होने से कोई वस्तु अनित्य नहीं होती कार्य होने से वस्तु अनित्य होती है। इसी प्रकार जो यह कहते हैं कि ओर वा दिशाओं से सम्बन्ध होने से परमाणु अनित्य हैं, यहां प्रसिद्ध तु है। ओर से कोई वस्तु नाश वाली नहीं होती, किन्तु कार्य होने स होती ह।

शङ्का—आकाश परमाणु के अन्दर है या नहीं ? यदि अन्दर है, तब अवकाश के होने से परमाणु अनित्य हो जायगा, यदि नहीं है तब आकाश विभु नहीं होगा।

समाधान—अन्दर आकाश उस वस्तु के होगा जो कारण से बनी हो या जिसमें अनेक द्रव्य मिले हों। जब परमाणु कार्य द्रव्य है ही नहीं तब यह प्रश्न ही अशुद्ध है कि परमाणु में आकाश है। आकाश का विभुत्व यही है, कि उसका सब मूर्त द्रव्यों के साथ सम्बन्ध है।

शङ्का—परमाणु के अन्दर परमात्मा विद्यमान है या नहीं, यदि है तब परमाणु अनित्य हो जायगा, यदि नहीं तब परमात्मा सर्वव्यापक नहीं रहेगा।

समाधान—निराकार वस्तु के लिये आकाश वा प्रदेश की आवश्यकता नहीं होती, जैसे काल, दिशा, परमात्मा, आकाश आदि सब वस्तुएं एक स्थान में रहती हैं, जैसे एक मनुष्य के हृदय में सम्पूर्ण संसार के विचार वा विद्या विद्यमान होती हैं। यदि विचार वा विद्यायें स्थान को घेरतीं, तब कभी भी मनुष्य के हृदय में न समा सकतीं, इस प्रकार परमात्मा भी अभौतिक वस्तु है, अतः परमाणु के अन्दर होते हुए भी उसको आकाश की आवश्यकता नहीं है।

शङ्का—विज्ञान पहले परमाणु को नित्य मानता था किन्तु अब अनित्य मानता है उसके आगे भी ईलैट्रान्ज हैं।

समाधान—विज्ञान के वादों में परिवर्तन होता रहता है, आर्य सिद्धान्तों में नहीं, जिसको विज्ञान अन्त में मानेगा, वही परमाणु है क्योंकि परमाणु के आगे कोई भी भौतिक वस्तु नहीं है। दूसरी बात यह है कि परमाणु अतीन्द्रिय हैं, उनका इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।

शङ्का—स्वामी दयानन्द जी ने परमाणु को अनित्य माना है।

समाधान—यह विचार सर्वथा अशुद्ध है कि स्वामी जी ने परमाणु को अनित्य माना है, स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में स्पष्ट लिखा है कि परमाणु के टुकड़े नहीं होते एक प्रमाण ऋ० । १ । १६४ । २० । के भाष्य का नीचे दिया जाता है :—

तथैव यस्मादव्यक्तात् परमाणुरूपात् कारणात् कार्यं जायते तदप्यनादि नित्यं च ।

जैसे परमात्मा जीवात्मा नित्य हैं वैसे ही जिस अव्यक्त परमाणुरूप कारण से कार्यजगत् उत्पन्न होता है वह भी नित्य वा अनादि है । यहां स्पष्ट स्वामी जी ने प्रकृति परमाणु को एक वा अनादि नित्य माना है, इस प्रकार सैंकड़ों स्थानों पर स्वामी जी ने परमाणुओं को नित्य माना है ।

यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत । अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत ऋ० ।। १० । ७२ । ६ ।।

इन्द्रियादि सब संसार प्रकृति में विद्यमान था जब भगवान् ने प्रकृति में गति उत्पन्न की तब नृत्य करने वाले की तरह परमाणुओं में गति उत्पन्न हो गई । इस मन्त्र में स्पष्ट वेद ने परमाणु की सत्ता को स्वीकार किया है ।

वेद

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत् ।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत ।। ऋ० १० । ७२ । २ ।।

परमात्मा ने लुहार की तरह प्रकृति में हलचल उत्पन्न की, इस प्रकार अव्यक्त प्रकृति से व्यक्त संसार उत्पन्न किया । यहां वेद ने लुहार का

उदाहरण देकर यह स्पष्ट कर दिया है, कि संसार में अनादि ३ कारण हैं।

२. सब से सूक्ष्म टुकड़ा अर्थात् जो काटा नहीं जाता उसका नाम परमाणु, ६० परमाणुओं के मिले हुए का नाम अणु, दो अणु का एक द्वयणुक, जो स्थूल वायु है, तीन द्वयणुक का अग्नि, चार द्वयणुक का जल, पांच द्वयाणुक की पृथिवी, अर्थात् तीन द्वयणुक का त्रसरेणु, और उसका दूना होने से पृथिवी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं॥ सत्या० स० ८ पृ० २३८॥

३. यद्द्रव्य विभक्तं विभागानर्हं तस्य परमाणु संज्ञेति व्यवहारः। ते हि विभक्ताः अतीन्द्रियाः सन्त आकाशे वर्तन्त एव ॥ ऋ० वे० भा० भू० पृ० ५४॥

जिस द्रव्य का विभाग नहीं होता वह परमाणु है, वह अतीन्द्रिय आकाश में अवश्य रहता है।

४. उपादानकारण प्रकृति परमाणु जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं। सत्या० समु० ८ पृ० २२१॥

मुक्ति तथा उसके साधन

मुक्ति क्या है उसके साधन क्या हैं, इसी विषय में भी नूतन दर्शन सम्प्रदाय में बहुत मतभेद पाया जाता है। कोई कहता है कि दुःखों से छूटने को मुक्ति कहते हैं दूसरा कहता है कि ज्ञान से अज्ञान के आवरण के हटने से अपने आपको ब्रह्म मानना मुक्ति है, अपर कहता है, जीवका स्वस्वरूप में स्थिर होना मुक्ति है, अन्य स्वर्ग में जाना ही मुक्ति मानते हैं। जैसे मुक्ति के विषय में मतभेद है वैसे ही उसके साधनों के विषय में मतभेद है। कोई ज्ञानसे मुक्ति मानता है कोई कर्म से, अपर स्वरूप ज्ञान से, इस प्रकार नूतन लोगों ने दर्शनों में बड़ा भारी भेद उपस्थित कर दिया है मेरे विचार में मूल दर्शनों में मुक्ति तथा उसके साधनों में कोई भी मतभेद नहीं है उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

न्याय

तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः ॥ १।१।२२ ॥

दुःखों से अत्यन्त छूट कर परमानन्द को प्राप्त होना मुक्ति है यहां गौतम ने दुःखों से छूटना मुक्ति माना है।

वेदान्त

ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ॥ ४।४।५ ॥

मुक्त जीव दुःखों से छूट कर ब्रह्म के आनन्द के साथ रहता है यहां इस बात को स्पष्ट किया है कि जीव मुक्ति में ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है।

सांख्य

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ।
॥ १ । १ ॥

तीन प्रकार के दुःखों से अत्यन्त छूट जाने को मुक्ति कहते हैं। यहां कपिल ने भी दुःखों से छूटना मुक्ति माना है।

योग

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं,
स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥ ४ । ३४ ॥

जब गुणों के द्वारा जीव को सांसारिक सुख दुःख मिलना बन्द होजाता है तथा जीवात्मा परमात्मा के स्वरूप में स्थिर हो जाता है उस को मुक्ति कहते हैं। यहां योगकार ने भी दुःखाभाव तथा ब्रह्मप्राप्ति को कैवल्य माना है।

वैशेषिक

आत्मगुणकर्मसु मोक्षो व्याख्यातः ॥ ६ । २ । १६ ॥

परमात्मा के जो गुण हैं अर्थात् दुःखों से पृथक् होकर आनन्द का भोगना वही मोक्ष-मुक्ति है।

मुक्ति के साधन

जैसे दर्शनकारों का मुक्ति विषय में परस्पर कोई विरोध नहीं है वैसे ही उसके साधनों में भी कोई विरोध नहीं है। उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

न्याय

अरण्यगुहापुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशात् ॥४ २।४१॥

अरण्य, गुहा, पुलिन आदि में मुक्ति के लिये योगाभ्यास करना चाहिये।

तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्म-विध्युपायैः ॥४।२।४५॥

मुक्ति के लिये यम नियम के द्वारा आत्मसंस्कार उत्पन्न करना चाहिये तथा अन्य भी ब्रह्मचर्यादि उपायों का अवलम्बन करना चाहिये।

सांख्य

ध्यानधारणाभ्यासवैराग्यादिभिस्तन्निरोधः ॥६। २६॥

ध्यान, धारणा, अभ्यास, वैराग्य आदि से मन का निरोध करना चाहिये ।

वैशेषिक

अभिषेचनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुलवास--

वानप्रस्थयज्ञदानप्रोक्षणदिङ्नक्षत्र-

मन्त्रकालनियमाश्चादृष्टाय ॥ ६।२।२ ॥

अभिषेचन, ब्रह्मचर्य, गुरुकुल वास, वानप्रस्थ, यज्ञ, दान, मन्त्रों का जप आदि धर्म, मुक्ति के लिये होते हैं ।

वेदान्त

शमदमाद्युपेतस्स्यात्तथापि तु तद्विधेस्तदङ्गतया तेषा-

मवश्यमनुष्ठेयत्वात् ॥३।४।२७॥

मुमुक्षु को चाहिये कि शम, दम आदि साधनों से मुक्ति प्राप्त करे क्योंकि वे मुक्ति के अङ्ग हैं, अतः उनका अवश्य अनुष्ठान करना चाहिए ।

योग

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार-धारणाध्यानसमाधयो-

चणाङ्गानि ॥ २ । २९ ॥

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, ये योग के आठ अङ्ग है।

इस प्रकार सब दर्शनकार मुक्ति के साधन समान ही मानते हैं, परस्पर कोई भी विरोध नहीं है।

शङ्का—वेदान्त दर्शन में यह लिखा है, कि मुक्ति में जीव ब्रह्म हो होजाता है, क्या यह सत्य है ?

समाधान—वेदान्त में एक भी सूत्र ऐसा नहीं है, जिसमें यह लिखा हो कि जीव ब्रह्म हो जाता है इसके विपरीत सूत्र आते हैं, जैसे कि अध्याय चार में लिखा है:—

जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसंनिहितत्वाच्च ॥ ४ । ४ । १७ ॥

मुक्त जीव में संसार की रचना, पालना तथा प्रलय का सामर्थ्य नहीं होता, क्योंकि यह सामर्थ्य परमात्मा ही में होता है, जीव में कदापि नहीं।

मुक्त जीव में केवल परमात्मा के साथ इतनी ही समानता होनी है कि वह ईश्वर के आनन्द का उपभोग मात्र करता है।

इन सूत्रों में महर्षि व्यास ने इस बात का स्पष्टीकरण कर दिया है कि जीव मुक्ति में भी ईश्वर नहीं बन सकता।

—)0(—

संसार

यह कार्यजगत् क्या है? इसमें भी दार्शनिकों का मतभेद है, जो नवीन वेदान्तियों ने उत्पन्न किया है। उनका कथन है, कि संसार स्वप्न के विषयों की तरह मिथ्या, है जैसे स्वप्न के विषय नहीं होते वैसे ही यह संसार भी नहीं है, मिथ्या प्रतीत हो रहा है। मेरे विचार में यह नवीन वेदान्तियों का असत्य विचार किसी भी दर्शन में नहीं पाया जाता। प्रमाण अधोलिखित हैं :—

वेदान्त

नाभाव उपलब्धेः ॥ २। २। २८ ॥

बौद्ध मानते हैं। यथा हि—मायामरीच्युदकगन्धर्वनगरादिप्रत्यया विनैव बाह्येनार्थेनग्राह्यग्राहकाकारा भवन्ति। एवं जागरितगोचरा अपि स्तम्भादिप्रत्ययाः।

जैसे स्वप्न, माया, मरीच, उदक, मृगतृष्णा, गन्धर्व नगर, आदि ज्ञान विना अर्थ के होते हैं, इसी प्रकार जो संसार के पदार्थ हैं वे भी असत्य, भ्रम मात्र हैं उनकी कोई भी सत्ता नहीं हैं। इस पर शङ्कर लिखते हैं—

न खल्वभावो बाह्यस्यार्थस्याध्यवसितु शक्यते। कस्मात्

उपलभ्यते हि प्रति प्रत्ययं बाह्योऽर्थः स्तम्भ कुड्यः घट इति। न चोपलभ्यमानस्यैवाभावो भवितुमर्हति यथा हि कश्चिद्भुञ्जानो भुजिसाध्यायां तृप्तौ स्वयमनुभूयमानायामेवं ब्रूयान्नाहं भुञ्जानो वा तृप्यामीति। तद्वदिन्द्रियसन्निकर्षेण स्वयमुपलभमान एव बाह्यमर्थं नाहमुपलभे न च सोऽस्तीति ब्रुवन् कथमुपादेयवचनः स्यात्।

बाह्य पदार्थों का अभाव नहीं कह सकते, क्योंकि प्रत्येक ज्ञानके प्रति घट घट आदि सब पदार्थ विद्यमान हैं, जब प्रत्येक पदार्थ मौजूद है तो यह कैसे कह सकते हैं कि ये वस्तुएं नहीं हैं जैसे कोई स्वादिष्ट पदार्थ को खाता हुआ उसके स्वाद का अनुभव करता हुआ यह कहे कि मैं खाता भी नहीं, तथा उसकी तृप्तिको भी अनुभव नहीं करता, वैसे ही जिन पदार्थों का हम इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं, पुनः उनके विषय में यह कहने वाला कि ये वस्तुएं नहीं हैं, श्रद्धा का पात्र कैसे हो सकता है? इस पर बौद्ध कहता है, कि मैं यह नहीं कहता कि पदार्थ नहीं हैं, किन्तु यह कहता हूँ कि ज्ञान के सिवाय नहीं हैं। इस पर शङ्कर कहते हैं—

बाढमेवं ब्रवीषि निरङ्कुशत्वात्ते तुण्डस्य न तु युक्त्युपेतं ब्रवीषि।

ठीक ऐसा कहता है, तेरे मुख पर कोई चपेटिका मारने वाला

नहीं है, अन्यथा तुमको पता लग जावे कि बाह्य अर्थ है या नहीं है।

वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् ॥ २।२।२६॥

संसार स्वप्न की तरह असत्य नहीं है क्योंकि स्वप्न तथा जागरित में बड़ा भेद है। इस पर स्वामी शङ्कर ने कई युक्तियें दी हैं-प्रथम यह है कि स्वप्न के पदार्थों का जाग्रत में बाध हो जाता है तथा जाग्रत के पदार्थों का किसी भी अवस्था में बाध नहीं होता, अतः जाग्रत के पदार्थ स्वप्नवत् असत्य नहीं।

दूसरी युक्ति यह है कि स्वप्न स्मृति है तथा जाग्रत उपलब्धि है, पुत्र को स्मरण करता हूं देखता नहीं। इस प्रकार स्मरण तथा उपलब्धि का बड़ा भारी अन्तर है, अतः जाग्रत के पदार्थ स्वप्नवत् असत्य नहीं। तीसरी युक्ति यह है कि कुछ धर्मों के समान होने से सब पदार्थ एक नहीं होजाते जैसे अग्नि तथा जल द्रव्यत्वेन समान हैं, इसका यह अर्थ नहीं है कि आग तथा जल एक ही हैं, इसी प्रकार यदि स्वप्न वा जाग्रत के कुछ धर्म समान हैं तब इसके ये अर्थ नहीं हैं कि स्वप्न वा जाग्रत एक ही हैं।

जो जिसका स्वयं धर्म नहीं होता वह साधर्म्य से उस का धर्म नहीं हो सकता, इस प्रकार बड़े बल के साथ महर्षि व्यास ने इस बात का खण्डन किया है कि संसार स्वप्नवत् असत्य है। स्वामी शङ्कर से भी यहां कोई मार्ग नहीं बन पड़ा। उन्हों ने भी सूत्रकार की हां में हां मिलाई है। वेदान्ती जिन स्वप्न वा मृगतृष्णादि दृष्टान्तों को देते थकते नहीं, वे सब बौद्धों के दृष्टान्त हैं, तथा स्वामी शङ्कर ने यहां भली

प्रकार धुर्रे उड़ाए हैं। इस सूत्र पर रामानुज लिखते हैं—

ज्ञानमात्रमेव परमार्थ इति साधयन्तः सर्वलोकोपहासोपकरणं भवन्तीति। वेदवादछद्मप्रच्छन्नबौद्धनिराकरणे निपुणतरं प्रपञ्चितम्।

यहां जो लोग यह मानते हैं कि ज्ञान के सिवाय बाह्य पदार्थ नहीं है, वे सब लोगों के उपहास के पात्र हैं इसी प्रकार मायावदी नवीन वेदान्ती जो ज्ञान के सिवाय बाह्य पदार्थों की सत्ता को स्वीकार नहीं करते वे भी छिपे हुए बौद्ध हैं, केवल उन्होंने वेद का बहाना बनाया हुआ है।

न्याय

पूर्व पक्ष करते हुए महर्षि गौतम लिखते हैं :—

स्वप्नविषयाभिमानवदयं प्रमाणप्रमेयाभिमानः ॥४।२।३१॥

मायागन्धर्वनगरमृगतृष्णिकावद्वा ॥ ४।२।३२ ॥

यह प्रमाण प्रमेय का व्यवहार स्वप्न गन्धर्वनगर तथा मृगतृष्णावत् असत्य है। इसके उत्तर में लिखा है—

हेत्वभावादसिद्धिः ॥ ४ । २ । ३३ ॥

जब तक प्रमाणों से यह सिद्ध न किया जावे कि संसार स्वप्नवत् मिथ्या है तब तक केवल दृष्टान्त से यह बात सिद्ध नहीं हो सकती, इस लिये यह सिद्धान्त त्याज्य है कि संसार स्वप्नवत् मिथ्या है।

सांख्य

नासदुत्पादो नृशृङ्गवत् ॥ १ । ११४ ॥

मनुष्य के सींग की तरह असत्य उत्पन्न नहीं होता। यदि संसार असत्य होता तब मनुष्य के सींग की तरह इसकी भी उत्पत्ति हो सकती। इससे सिद्ध है कि कार्यजगत् असत्य नहीं है।

इस प्रकार सब दर्शनकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि संसार स्वप्नवत् मिथ्या नहीं है।

पुनर्जन्म

इस सिद्धान्त में भी सब दर्शनकार एकमत हैं कि कर्म के अनुसार जीवात्मा का पुनर्जन्म होता है। प्रमाण नीचे दिये जाते हैं:—

न्याय

पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः ॥१।१।१६॥

शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि के साथ जीवात्मा के पुनः सम्बन्ध को पुनर्जन्म कहते हैं।

पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धजातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तेः
॥ ३।१।१७ ॥

प्रथम जन्म की स्मृति के अनुसार बच्चे को हर्ष, भय, शोकादि होते हैं, इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है, कि न्याय कर्ता पुनर्जन्म मानते हैं।

योग

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगः ॥२।१३॥

क्लेशों के होने पर पाप पुण्य का फल जाति, आयु तथा भोग मिलता है।

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥२।१४॥

वे जाति आयु तथा भोग पुण्यहेतुक होने से आनन्द के देने वाले तथा पाप हेतुक होने से दुःख के देने वाले होते हैं।

सांख्य

ऊर्ध्वं सत्त्वविशालाः ॥ ३।४८॥

सत्व प्रधान पुरुष ऊंची योनियों में जन्म लेते हैं।

तमो विशाला मूलतः ॥३।४६॥

तमोगुणी पुरुष नीचे योनियों में जाते हैं।

मध्ये रजो विशालाः ॥३।५०॥

रजोगुण प्रधान जीव मध्य योनियों में जाते हैं। इस प्रकार सांख्य में पुनर्जन्म का वर्णन आता है।

वेदांत

कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः ॥

२।३।४२॥

जीव को स्वकर्म के अनुसार ही शुभ अशुभ फल तथा दूसरा शरीर मिला है। यदि ऐसा न हो तब विहित तथा प्रतिषिद्ध सब कर्म निष्फल हो जाते हैं।

वैशेषिक

तदभावे संयोगाभावऽप्रादुर्भावश्च मोक्षः ॥५।२।१८॥

शुभाशुभ कर्म का अभाव होने से जीव का पुनर्जन्म नहीं होता तथा पुनर्जन्म के न होने से मोक्ष हो जाता है। इस प्रकार सब दर्शनकारों ने पुनर्जन्म माना है।

वेद ईश्वरीय ज्ञान है

वेदान्त

शास्त्रयोनित्वात् ॥१।१।३॥

शाङ्करभाष्य

ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म । नहीदृशस्य सर्वज्ञादन्यतः सम्भवोऽस्ति यद्यद्विस्तारार्थं शास्त्रं यस्मात् पुरुषविशेषात् सम्भवति यथा व्याकरणादि पाणिन्यादेर्ज्ञेयैकदेशार्थमपि स ततोऽप्यधिकतरविज्ञान इति प्रसिद्धं लोके ।

अनेक विद्याओं से युक्त प्रदीपवत् सब अर्थों का प्रकाश करने वाला सर्वज्ञ शास्त्र का कारण ब्रह्म है । ऐसे सर्वज्ञ गुणों से युक्त शास्त्र को सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं बना सकता ।

महर्षि पाणिनि आदि ने एक २ विद्या को लेकर जो शास्त्र रचा है, जब उसकी इतनी महिमा है तो जिस में सब विद्याएं विद्यमान है, उसका कहना ही क्या है ।

शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ॥
१।३।२८॥

यदि कहो कि वेद में अनित्य व्यक्तियों के नाम आने से वह अनित्य वा इतिहास वाला है, तब ठीक नहीं। क्योंकि वेद ही में से लेकर ऋषियों ने पदार्थों के नाम रक्खे हैं। ऐसा ही वेद तथा स्मृति से सिद्ध है। यथा ऋ० ६।६५।२—

हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावं।
देवो देवानां गुह्यानि नामा विष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे॥

परमात्मा जब संसार को उत्पन्न करता है, तब ऋषियों के हृदय में सब गुप्त नामों का प्रकाश करता है इस वेद मन्त्र से सिद्ध है कि वेदों में से शब्द लेकर वस्तुओं के नाम रक्खे जाते हैं।

मनु ने भी यही बात लिखी है—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे। मनु॥१।२१॥
अत एव च नित्यत्वं ॥१।३।६॥

परमात्मा का ज्ञान होने से वेद नित्य हैं।

शङ्का—जब संसार का प्रलय होजाता है तब वेद भी नष्ट होजाते हैं, पुनः नित्य कैसे हुए ?

समाधान—समाननामरूपत्वाच्चावृत्तावप्यविरोधा दर्शनात् स्मृतेश्च ॥१।३।३०॥

जब २ परमात्मा संसार की रचना करता है। तब २ वैसी ही करता है जैसा पूर्वकल्प में करता है। यही बात वेद तथा स्मृति में लिखी है—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् ॥८।४८।३॥

अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ॥

मनु०॥१।२१॥

मीमांसा

औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धेः तत् प्रमाणं बादरायणस्यानपक्षेत्वात् ॥१।१।५॥

शब्द का अर्थ के साथ स्वाभाविक सम्बन्ध है। इसका ज्ञान वा उपदेश परमात्मा ने किया है। जो अर्थ किसी भी प्रमाण से उपलब्ध न हो उसका उपदेश भी वेद द्वारा परमात्मा ने किया है अतः वेद स्वतः प्रमाण है।

शङ्का—वेदों में अनित्य, गङ्गा, यमुनादि नदियों के नाम आते हैं।

इस से सिद्ध है कि वेद भूगोल है तथा निरुक्त में लिखा है—'पाशा अस्यां व्यपाशयन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतः तस्माद्विपाडुच्यते पूर्वमासी-दुरुञ्जिरा'। व्यास नदी का नाम प्रथम उरुञ्जिरा था। जब वसिष्ठ के बन्धन इस से टूटे तब से इसका नाम विपाश हो गया। इस से भी सिद्ध है कि वेद में अनित्य इतिहास है। वेद इस वसिष्ठ की घटना के पश्चात् बना है।

समाधान—**उक्तं तु शब्दपूर्वत्वम्** ॥१।१।२६॥

यह हम प्रथम कह चुके हैं, कि ऋषियों ने वेदों में से शब्द लेकर सांसारिक पदार्थों के नाम रक्खे हैं। गङ्गा, यमुना का मन्त्र नीचे लिख कर उसका समाधान किया जाता है—

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या। असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणु-ह्यासुषोमया ॥ ऋ० १०।७५।५॥

इस मन्त्र में गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री, परुष्णी, असिक्नी मरुद्वृधा, वितस्ता, आर्जिकीया, सुषोमा इस प्रकार १० नाम आते हैं। ये नाम गङ्गादि किसी विशेष नदी के नहीं हैं किन्तु आध्यात्मिक अर्थ में जो शरीर के अन्दर मुख्य १० नाड़ियें हैं, उनके ये नाम हैं। प्रमाण नीचे दिये जाते हैं—

नाभिस्थानगकन्दोर्ध्वमंकुरादेव निर्गता।
द्विसप्ततिसहस्राणि देहमध्ये व्यवस्थिता ॥

तासां मध्ये दश श्रेष्ठा दशानां तिस्र उत्तमाः ॥

नाभिकंद से ७२ हजार नाड़ियें निकलती हैं । उन में उत्तम हैं । तथा १० में तीन उत्तम हैं ।

इडा गङ्गेति विज्ञेया पिङ्गला यमुना नदी ।
मध्ये सरस्वती विद्यात् प्रयागादि समस्तथा ॥

इडा नाड़ी का नाम गङ्गा है तथा पिङ्गला का यमुना है मध्य नाड़ी सुषुम्णा का नाम सरस्वती है ।

२. ऋग्वेद में आता है—

इडा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः ॥ १।१३।६॥

तीन देवियें सुख के देने वाली हैं । इस पर ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है—

तिस्रो देवीर्यजति प्राणो वा अपानो व्यानश्चेति इडा सरस्वती मही ॥ ऐ० ६।४॥

प्राण, अपान, व्यान ये तीन देवियें हैं ॥ अथर्व में आता है—

तिष्ठादित् धमनिर्मही ॥१।१७।२॥
शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम् ॥१।१७।३॥

यहां भी मही नाम नाड़ी का का आया है ।

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश ॥
ऋ० ६। ७।१८॥

इस मन्त्र में भी जीव की ११० नाड़ियों का वर्णन आता है, जिनके द्वारा वह विशेष कार्य करता है। इस पर छां० ८।६।६।

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका ।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विश्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ।

हृदय से १०१ नाड़ियें निकलती हैं उन में से एक नाड़ी मूर्धा की तरफ जाती है जो उसके द्वारा अपने प्राणों को छोड़ता है वह मुक्ति को प्राप्त होता है।

४. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में श्री स्वामी दयानन्द जी लिखते है—

सितासिते सरिते यत्र सङ्गथे तत्राप्लुतासोदिवमुत्पतन्ति ।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासोऽमृतत्वं भजन्ते ।
इडा पिंगला सुषुम्ना कूर्म नाड्यादीनां गङ्गादि-संज्ञास्तीति, तासां योगसमाधौ परमेश्वरस्य ग्रहणात् ।

इड़ा, पिङ्गला सुषुम्ना, आदि नाड़ियों की गङ्गा, यमुना आदि संज्ञा है, क्योंकि वे योग समाधि में परमात्मा की प्राप्ति में सहायक होती हैं।

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि गङ्गादि नाड़ियों के नाम हैं, किसी विशेष नदी के नहीं।

निरुक्त का भी अभिप्राय यही है कि वशिष्ठ नाम योगी का है। जब तक योगी अभ्यास नहीं करता तब तक इड़ादि नाड़ियें उरुञ्जिरा अनेक प्रकार से जीवात्मा को जीर्ण शीर्ण करने वाली होती हैं किन्तु जब वह अभ्यास के द्वारा नाड़ियों को वश में कर लेता है तब वह उसके लिये विपाशा-बन्धन के काटने वाली होजाती है।

शङ्का—वेदों में गौतम, वशिष्ठ, भरद्वाज, विश्वकर्मा आदि ऋषियों के स्पष्ट नाम आते हैं इस से साफ़ सिद्ध है कि वेद में ऐतिहासिक पुरुषों के नाम हैं। और इन नामों के होते हुए वेद प्रभु का ज्ञान नहीं हो सकता।

समाधान—परं तु श्रुति सामान्यमात्रम् ॥ १ । १ । ३१ ॥

वेदों में जो गौतमादि नाम आते हैं ये किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के (प्रौपरनाउन) नहीं हैं किन्तु सामान्य नाम (कौमननाउन) हैं। इस सिद्धान्त की पुष्टि के लिये नीचे प्रमाण दिये जाते हैं—

१. अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवां ऋषिरस्मि विप्रः।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥
ऋ० ४ । २६ । १ ॥

परमेश्वर कहता है मनु, सूर्य, कक्षीवान् ऋषि, विप्र, कुत्स,

कवि उशना आदि सब मेरे ही नाम हैं।

शङ्का—इस मन्त्र में परमात्मा का वर्णन नहीं है, किन्तु वामदेव ऋषि को जब ज्ञान हुआ तब वह कहता है कि मनु आदि सब मेरे ही नाम हैं।

समाधान— अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपोऽनयं वावशाना मम देवासोऽनु केतमायन॥
॥ ४ । २६ । २ ॥

मैंने आर्य के लिये यह भूमि प्रदान की है मैं ही संसार के लिये वर्षा करता हूं। सब देव मेरे पीछे चलते हैं। ये कार्य किसी जीव के नहीं हो सकते किन्तु परमात्मा के हैं।

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवःसखा।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः॥
ऋ० १ । ३१ । १ ॥

हे अग्ने परमात्मन् आप प्रथम अङ्गिरा ऋषि हैं, आप ही विद्वानों के सच्चे सखा हैं, आप ही के आदेश का पालन करके मनुष्य ऊंचा होता है।

शङ्का—इस मन्त्र में अङ्गिरा नाम ऋषि का है परमात्मा का नहीं।

समाधान—इसी सूक्त के सातवें मन्त्र में लिखा है:—

त्वं तमग्ने अमृतत्त्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवे दिवे ।
यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये ॥
ऋ० १।३१।७॥

हे अग्ने आप ही उस पुरुष को अमृत पद पर पहुंचाते हो, जो प्रति दिन आपके गुणों का कीर्तन करता है. जो आपका पियासु है उसके लिये आप आनन्द की वर्षा करते है इस मन्त्र में जो गुण वर्णन किये हैं वे प्रभु के सिवाय दूसरे में नहीं हो सकते ।

अयं स देवोऽप्स्वन्तः सहस्रमूलः । य इदं विश्वं भुवनं जजान तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति । उद्वेपय रोहित प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रतिमुञ्च पाशान् अ० १३ । ३ । १५ ॥

यह वह प्रभु देव है जो जलों के अन्दर व्यापक है, सहस्रों वस्तुओं का नाम मूल है, इसी का नाम अग्नि है, उस भगवान का उस व्यक्ति पर क्रोध है जो विद्वान् ब्राह्मण को सताता है ।

इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्या विवासताम् । अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन् सत एति रक्षसः ऋ० ७ । १०४ । २१ ॥

इन्द्र राक्षसों का पराशर—काटने वाला है जैसे कुल्हाड़ा वन को

काटता है। वैसे ही प्रभु पापियों को दण्ड देता है। उपर्युक्त प्रमाणों से मनु, सूर्य, विप्र, कक्षीवान् उशना, अङ्गिरा, पराशर, अत्रि आदि सब नाम परमात्मा के आये हैं, पुनः यह नाम वेद में ऐतिहासिक व्यक्ति वाचक (प्रौपर नाउन) कैसे हो सकते हैं ?

२. इन्द्रिय वाचक।

य० १३। ५४। में वशिष्ठ प्राण का नाम तथा भरद्वाज मन का नाम, विश्वामित्र कान का नाम, जमदग्नि आंख का नाम और विश्वामित्र का नाम आता हैः—

सप्त ऋषयः प्रतिहिता शरीरे।

शरीर में सात ऋषि हैं। इस प्रकार वशिष्ठ आदि नाम वेद इन्द्रियों के वाचक आते हैं पुनः यह व्यक्तिवाचक नाम कैसे हो सकते हैं ?

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च विवर्तेते रजसि वेद्याभिः।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि॥
ऋ० ६। ६। १॥

रात्रि कृष्ण काली है, तथा दिन अर्जुन श्वेत है। इस मन्त्र में कृष्ण नाम रात का, तथा अर्जुन नाम दिन का आता है, इसी प्रकार अ० १३। में आया हैः--

कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत।

यदि यहां ऐतिहासिक अर्थ किया जावे तब इसका यह अर्थ होगा कि अर्जुन द्रौपदी का पुत्र था जो असम्भव है। वास्तविक अर्थ इसका यह है कि काली रात्रि का अर्जुन श्वेत दिन पुत्र है। इस प्रकार वेद में कहीं भी कृष्ण शब्द ऐतिहासिक व्यक्तिवाचक नहीं आता।

भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्। सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥

ऋ० १०। ३। ३॥

सायणभाष्यं

राम कृष्णं शार्वरं तमोऽभिभूय तिष्ठति।

राम काला रात्रि का अन्धकार। इस प्रकार वेद में राम, कृष्ण शब्द का अर्थ अन्धकार आता है राम तथा कृष्ण के नाम भी इसी लिये रक्खे थे कि वे काले थे।

उपर्युक्त उदाहरणों से सिद्ध है कि वेदों में सामान्य नाम आते हैं, ऐतिहासिक व्यक्तिवाचक नहीं।

शङ्का वेद मन्त्रों पर तथा सूक्तों पर जो ऋषियों के नाम आते हैं वे ऋषि वेदों के कर्ता थे।

समाधान — आख्याप्रवचनात् ॥ १।१।३० ॥

जो वेद में मन्त्रों पर ऋषियों के नाम आते हैं, या काठक आदि नाम हैं वे वेदों का प्रवचन करने से या मन्त्रों के द्रष्टा होने से आते हैं कर्ता होने से नहीं। सब अनुक्रमणिकाओं में ऐसा ही लिखा है बृहद्देवता के कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं:—

मन्त्रा नाना प्रकाराः स्युर्दृष्टा वै मन्त्रदर्शिभिः। स्तुत्या चैव विभूत्या वाक्प्रभावेण चात्मनः॥ १। ३४॥

प्रभु की स्तुति से विभूति तथा वाणी के प्रभाव से ऋषियों ने नाना प्रकार के मन्त्रों का अर्थ देखा।

यथा नानाविधैः शब्दैरपश्यन्नृषयः पुरा॥ १।४६॥

अनेक प्रकार के शब्दों के द्वारा ऋषियों ने वेदार्थ को देखा।

ऋग्वेदमखिलं ये हि द्रष्टारो मुनिपुङ्गवाः।
तदनुक्रमणायाहं नमामि परमेश्वरीं॥ १। आ०॥

जिन ऋषियों ने सम्पूर्ण ऋग्वेद देखा है उनकी अनुक्रणिका बतलाने के लिये भगवान् को नमस्कार करता हूं।

यैर्वेदमन्त्राः सकलाः सुदृष्टा येनार्षानुक्रमणी प्रदिष्टाः।
नमोस्तु तेभ्यो मुनिपुंगवेभ्यो भवन्तु ते चापि मयि पसन्नाः॥

जिन्होंने सब वेद मन्त्रों को देखा है उनको नमस्कार है। ऋग्वेद आर्षानुक्रमणी में लिखा है:—

अवत्सार ऋषिरन्ये च दृष्टलिंगा ऋषयः ।

इस मन्त्र का ऋषि अवत्सार है और भी जिन्होंने इस मन्त्र का अर्थ देखा है, वे इसके ऋषि हैं। इससे सिद्ध है कि ऋषि मन्त्रों के द्रष्टा हैं कर्ता नहीं, अन्यथा जब एक ऋषि कर्ता है तब यह क्यों लिखा कि अन्य भी इसके द्रष्टा हैं ? उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि ऋषि वेदों के कर्ता नहीं।

वैशेषिक

तद्वचनादाम्नायस्य प्रमाण्यम् ॥१ १।३॥

ईश्वर का वचन होने से वेद चतुष्टय का प्रमाण है ।

न्याय

मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् ॥
२ । १। ६८ ॥

मन्त्रविचार तथा आयुर्वेदवत् वेदों का प्रमाण है । ऐसा ही सब आप्तों ने माना है।

योग

स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥१।२६॥

वह भगवान् सर्व प्रथम ऋषियों का भी गुरु है क्योंकि वह सर्वकाल में ज्ञानी है।

सांख्य

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत् पौरुषेयम् ॥५।५०॥

जिसमें कर्ता के न देखने पर भी कृतबुद्धि हो वह पौरुषेय है।
इस सूत्र में यह बतलाया है कि वेद पौरुषेय मनुष्य कृत नहीं है।

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ॥ ५ । ५१ ॥

वेद परमात्मा की अपनी शक्ति से प्रकट हुआ है, अतः स्वतःप्रमाण है, उसमें कोई त्रुटि नहीं।

शङ्का—**न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः** ॥ ५ । ४५ ॥

वेद नित्य नहीं हैं क्योंकि वेद में उनको कार्य लिखा है, इससे सिद्ध है कि वेद अनित्य हैं।

समाधान—**न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात्** ॥५।४६॥

वेद अनित्य वा मनुष्यकृत नहीं हैं क्योंकि इनका कर्ता कोई पुरुष नहीं है।

मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात् ॥ ५।४७ ॥

मुक्त तथा अमुक्त किसी में भी वेद के रचने की शक्ति नहीं है ।

शङ्का—**नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमंकुरादिवत्** ॥ ५ । ४८ ॥

अपौरुषेय होने से वेद नित्य नहीं, जैसे अंकुर अपौरुषेय होने पर भी नित्य नहीं ।

समाधान—**तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तिः** ॥५। ४९॥

यदि वेदों का कर्ता माना जावे वा अनित्य माना जावे तब प्रत्यक्ष का बाध है, क्योंकि प्रत्यक्ष से वेदोंका कर्ता सिद्ध नहीं होता, तथा जो जिसका स्वाभाविक गुण है वह नष्ट नहीं होता । वेद परमात्मा का स्वाभाविक ज्ञान है अतः वह अनित्य नहीं । इस प्रकार सब दर्शनकार वेदों को नित्य अपौरुषेय तथा परमात्मा का ज्ञान मानते हैं ।

प्रसिद्ध विरोधाभास परिहार

शङ्का—वैशेषिक तथा न्याय में बुद्धि तथा अहंकार को जीव का गुण माना है तथा सांख्य में यह लिखा है कि प्रकृति से बुद्धि, तथा बुद्धि से अहंकार, उत्पन्न हुआ, और अहंकार से पांच तन्मात्रा वा पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय तथा ग्यारहवां मन उत्पन्न हुआ। जब बुद्धि गुण है तब उस से द्रव्य कैसे उत्पन्न हो सकता है। यह प्रत्यक्ष विरोध है।

समाधान—इस शङ्का के निम्न लिखित समाधान हैं—

जब सृष्टि का समय आता है। तब परमात्मा उन परम सूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है, उस की प्रथम अवस्था में जो परम सूक्ष्म प्रकृति रूप कारण से कुछ स्थूल होता है उस का नाम महत्तत्व, और जो उस से कुछ स्थूल होता है उसका नाम अहंकार, और अहंकार से भिन्न २ पांच सूक्ष्म भूत, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण पांच ज्ञान इन्द्रियां, वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा ये पांच कर्म इन्द्रियां हैं। और ग्यारहवां मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है। और उन पंचतन्मात्राओं से अनेक स्थूलावस्थाओं को प्राप्त होते हुए क्रम से पांच स्थूल भूत जिनको हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं, उत्पन्न होते हैं, उन से नाना प्रकार की ओषधिया वृक्ष आदि, उन से अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर उत्पन्न होता है। सत्यार्थ० ८। पृ० २३३॥

इस लेख से सिद्ध है कि श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज महत्तत्व तथा अहंकार को द्रव्य मानते हैं।

२. लघ्वादिधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च गुणानाम् ॥
१।१२८॥ सां०

लघु आदि धर्मों से गुणों का साधर्म्य तथा वैधर्म्य है। यहां सांख्यकार ने जैसे गुणों को द्रव्य स्वीकार किया है वैसे ही बुद्धि आदि धर्म तथा गुणों वाले होने से द्रव्य हैं गुण नहीं।

३. प्रकृति जब अपनी अवस्था से च्युत हो कर कार्य रूप में परिणत होती है तब उस प्रथम कार्य अवस्था को बुद्धि तथा दूसरी अवस्था को अहंकार, इस लिये कहते हैं कि प्रकृति अव्यक्तावस्था में बुद्धि में आने के योग्य नहीं होती। इसी अवस्था को वेद के नासदीय सूक्त में अप्रकेत के नाम से तथा मनु में अविज्ञेय, अप्रतर्क्य के नाम से पुकारा है, जब वह प्रकृति अपनी अवस्था को छोड़ कर कार्यरूप में परिणत होती है तब उस को विचार के योग्य होने से बुद्धि नाम से पुकारते हैं।

महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः ॥ १ । ७१ ॥

इस प्रमाण में यह बतलाया है कि प्रकृति का जो प्रथम कार्य है वह मन है तथा आगे जाकर यह लिखा है कि अहंकार से मन उत्पन्न होता है। इस से परस्पर विरोध प्रतीत होता है। किन्तु विचार से पता लगता है कि यह विरोध नहीं है। परन्तु प्रथम जो कार्य है वह प्रकृति की प्रथम अवस्था है। और उसको मन वा बुद्धि इस लिये कहते हैं कि अव्यक्त से व्यक्त हो प्रकृति मन अर्थात् मनन के योग्य होती है, अतः महत् द्रव्य है गुण नहीं।

४. अभिमानोऽहंकारः ॥ १६ ॥ एकादश पञ्चतन्मात्रं तत्कार्यम् ॥ १७॥ सात्त्विकमेकादशकंप्रवर्तते वैकृतादहंकारात् ॥ ॥२।१८॥

अभिमान का नाम अहंकार है। अर्थात् प्रकृति का जब दूसरा कार्य तथा उसके कार्य इन्द्रियादि उत्पन्न होते हैं, तभी अहं; ममादि भाव उत्पन्न होते हैं, इस लिये प्रकृति के दूसरे कार्य को अभिमान कहते हैं, वह द्रव्य है। विकृत अहंकार से इन्द्रिय तथा मन उत्पन्न होता है इस से सिद्ध है कि जैसे प्रकृति के विकृत होने पर उस से कार्य जगत् पैदा होता है इसी प्रकार विकृत अहंकार से इन्द्रियादि कार्य उत्पन्न होते हैं इस लिये अहंकार द्रव्य है।

अध्यवसायो बुद्धिः ॥१३॥ तत्कार्यं धर्मादि ॥१४॥

अध्यवसाय का बुद्धि नाम है, धर्मादि उस के कार्य हैं।

क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् ॥ वै० १।१५॥

जिस में क्रिया हो, गुण हों, तथा जो किसी वस्तु का उपादान-कारण हो, उसको द्रव्य कहते हैं।

यह सम्पूर्ण लक्षण महत्तत्व तथा अहंकार में घटते हैं। अहंकार में अभिमान गुण है तथा वह विकृत होकर इन्द्रिय वा मन का तथा सूक्ष्म भूतों का उपादानकारण होता है। इस लिये क्रिया वाला समवायिकारण है। इसी प्रकार बुद्धि अध्यवसाय गुणवाली तथा अहंकार का उपादानकारण होने से द्रव्य है गुण नहीं।

शङ्का—न वयं षट्पदार्थवादिनो वैशेषिकादिवत् ॥
सां० १।२५॥

हम वैशेषिकादि की तरह छः पदार्थों के मानने वाले नहीं हैं। इस से सिद्ध है कि सांख्य वैशेषिक के विरुद्ध है।

समाधान—अनियतत्वेऽपि नायौक्तिकस्य संग्रहोऽन्यथा बालोन्मत्तादिसमत्त्वम् ॥ १।२६ ॥

जिस सूत्र का प्रमाण प्रतिपक्षी ने दिया है वह पूर्वपक्ष का सूत्र है क्योंकि उत्तरपक्ष में यह कहा है कि यदि नियत पदार्थ न मानें तब भी युक्तिशून्य बात को नहीं मान सकते अन्यथा उन्मत्त तथा बच्चों की तरह जो भी किसी बात को बतलायेगा उसको मानना पड़ेगा। पुनः सत्य तथा असत्य का कोई भी नियम नहीं रहेगा।

शङ्का—मीमांसा में शब्द को नित्य माना है तथा न्याय में शब्द को अनित्य माना है। यह दर्शनों का प्रत्यक्ष विरोध है, इसका क्या परिहार है ?

समाधान—मैवं मन्यतां। शब्दो द्विविधो नित्यकार्य-भेदात्। ये परमात्मज्ञानस्थाः शब्दार्थसम्बन्धाः सन्ति ते नित्या भवितुमर्हन्ति। येऽस्मदादीनां वर्तन्ते ते तु कार्याश्च। कुतः यस्य ज्ञानक्रिये नित्ये स्वभावसिद्धे अनादीस्तस्तस्य सर्वं सामर्थ्यमपि नित्यमेव भवितुमर्हति। तद्विद्यामयत्वाद्वे-

दानामनित्यत्वं नैव घटते ॥ ऋ० भा० भू० पृ० वेद के नित्यत्व० प्र० २६१ ॥

इस लेख से सिद्ध है कि शब्द नित्य तथा अनित्य भेद से दो प्रकार के हैं। जो हमारे अन्दर हैं वे अनित्य हैं तथा जो प्रभु के ज्ञान में स्थित हैं वे ज्ञानमय शब्द नित्य हैं। दूसरी बात यह है कि जो ध्वन्यात्मक शब्द हैं वे अनित्य हैं तथा जो वर्णात्मक शब्दज्ञान में स्थित हैं वह नित्य हैं। मीमांसा में भी वैदिक शब्दों को ही नित्य सिद्ध किया है क्योंकि उनका अधिकरण प्रभु नित्य ज्ञान वाला है कदापि उसका ज्ञान नष्ट नहीं होता इस प्रकार से शब्द के विषय में दर्शनो में कोई भेद नहीं है।

शङ्का—स्वामी शङ्कराचार्य ने वेदान्त के अनेक सूत्र लिख कर वैशेषिकादि दर्शनों का खण्डन किया है इससे सिद्ध है, कि दर्शनों में विरोध है।

समाधान—वेदान्त के किसी भी सूत्र में वैशेषिकादि दर्शनों का खण्डन नहीं किया। यह शङ्कराचार्य की अपनी कल्पना मात्र है। उदाहरण के लिये परमाणुवाद विषयक सूत्र नीचे दिये जाते हैं—

महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् ॥ २ । २ । ११ ॥

यथा ह्रस्व परिमण्डल से महत् तथा दीर्घ उत्पन्न होते हैं वैसे ही विशेष गुण वाले प्रभु से संसार उत्पन्न होता है।

उभयथापि न कर्मातस्तदभावः ॥ २ । २ । १२ ॥

कारणरूप तथा कार्यरूप दोनों प्रकार से भी परमात्मा की सहायता के बिना प्रकृति में स्वयं कर्म उत्पन्न नहीं हो सकता अतः निमित्तकारण ब्रह्म है।

समवायाऽभ्युपगमाच्च साम्यादनवस्थितेः ॥ २।२।१३॥

जैसे कार्यरूप जगत् में जड़तादि गुण समवाय सम्बन्ध से रहते हैं वैसे ही कारणप्रकृति में। अतः उनसे संसार की स्थिति नहीं हो सकती।

नित्यमेव च भावात् ॥ २।२।१४॥

यदि प्रकृति को संसार का निमित्तकारण मानें तब नित्य सृष्टि होनी चाहिये क्योंकि वह जड़ है।

रूपादिमत्वाच्च विपर्ययो दर्शनात् ॥ २।२।१५॥

जो संसार में रूपादि वाले पदार्थ हैं वे किसी भी वस्तु के निमित्तकारण चेतन की सहायता के बिना नहीं हो सकते। अतः संसार का निमित्तकारण ब्रह्म है।

उभयथा च दोषात् ॥ २।२।१६॥

यदि प्रकृति में रचने की शक्ति है तब प्रलय नहीं हो सकती, यदि नाश की शक्ति है तब रचना नहीं हो सकती। यदि दोनों हैं तब कुछ भी नहीं हो सकता। अतःचेतन होने से ब्रह्म ही संसार का निमित्तकारण है।

एतेन योगः प्रत्युक्तः ॥२।१।३॥

इससे इस बात का खण्डन जानना चाहिए जो ईश की सहायता के बिना भूतों के योग से सृष्टि की रचना मानते हैं।

शङ्का—स्वामी शङ्कर ने तो इन सूत्रों से परमाणूपादानवाद का खण्डन किया है।

समाधान—**रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम्** २।२।१॥

इस सूत्र से लेकर व्यास जी ने यह प्रकरण आरम्भ किया है कि ब्रह्म संसार का निमित्तकारण है।

पयोऽम्बुवच्चेत्तत्रापि ॥२।२३॥

इस सूत्र में स्वामी शङ्कर ने भी यही स्वीकार किया है कि ब्रह्म ही संसार का निमित्तकारण है। इस लिये शङ्कर की यह बात प्रमाण के विरुद्ध है कि इन सूत्रों में परमात्मा का खण्डन है। इस प्रकार से कहीं भी वेदान्त के मूल सूत्रों वैशेषिकादि दर्शनों का खण्डन नहीं हैं।

कर्म फलदाता

इस विषय में भी दर्शन एक मत हैं कि कर्मों का फल देने वाला परमेश्वर है। प्रमाण निम्न लिखित हैं:—

वेदान्त

फलमत उपपत्तेः ॥ ३ । २ । ३८ ॥

जीवों को कर्म फलदाता परमात्मा है क्योंकि वह सर्वव्यापक है। युक्ति से भी यही सिद्ध है। कोई भी जीव दुःख को नहीं चाहता किन्तु प्रत्येक को दुःख मिलता है, इससे सिद्ध है कि फलदाता परमात्मा है।

श्रुतत्वाच्च ॥ ३।२।३६ ॥

श्रुति में भी ऐसा ही प्रतिपादन किया है कि परमात्मा फल के देने वाला है यथा ऋ० १० । ४८ । १ ॥

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि संजयामि शश्वतः। मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे विभजामि भोजनम् ॥

परमेश्वर कहते हैं कि मैं ही इस संसार का पति वा उत्पादक हूँ

मेरी ही मनुष्य पिता की तरह प्रार्थना करते हैं मैं ही कर्म करने वालों को कर्मानुसार भोग देता हूं।

धर्मं जैमिनिरत एव ॥ ३।२।४० ॥

जैमिनि भी इसी बात को मानते हैं कि धर्म के अनुसार परमात्मा जीवों को फल देता है।

पूर्वं तु बादरायणो हेतुव्यपदेशात् ॥ ३२ ॥ ४१ ॥

व्यास जी महाराज का भी यही मत है कि परमात्मा जीवों को कर्म के अनुसार फल देता है।

वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथा हि दर्शयति ॥३२॥४१॥

यदि कहो कि परमात्मा किसी को दुःख देता है, किसी को सुख देता है, किसी को राजा घर उत्पन्न करता है, किसी को रङ्क के घर। इस प्रकार वह न्यायकारी नहीं ठहरता, तब ठीक नहीं, क्योंकि दुःख सुख कर्मों की अपेक्षा से मिलते हैं। ऐसा ही वेद में लिखा है—

न किल्विषमत्र नाधारोऽस्ति न यन्मित्रैः सममान एति।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनराविशाति ॥
अथर्व० १२।३।४८॥

परमात्मा के राज्य में कोई अन्याय नहीं है, न वहां किसी की सिफारिश चलती है, न मित्र कोई सहायता कर सकते हैं। वहां तो पूर्ण न्याय है जो जैसा कर्म करेगा उसको वैसा ही फल मिलेगा।

शङ्का—शरीर के बिना कर्म नहीं तथा कर्म के बिना शरीर नहीं पुनः प्रलय के पश्चात् परमात्मा बिना कर्मों के जीवों के शरीर कैसे बनायेगा ?

समाधान—**न कर्माऽविभागादिति चेन्नानादित्वात् ॥**
२।१।३५॥

यह शङ्का ठीक नहीं क्योंकि संसार जीवात्मा तथा उस के कर्म अनादि हैं। जैसे सोया हुआ मनुष्य प्रातःकाल उठ कर पूर्व दिनवत् अपने कर्म में प्रवृत्त होजाता है, इसी प्रकार प्रलय के पश्चात् परमात्मा पूर्व कर्म के अनुसार पुनः सृष्टि की रचना करता है।

शङ्का—कर्म करने की क्या आवश्यकता है ? परमात्मा जिसको चाहे दुःख देवे जिसको चाहे सुख देवे यह परमात्मा के आधीन है।

समाधान—**कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः**
॥ २ । ३ । ४२ ॥

परमेश्वर जीवों के शुभाशुभ कर्मों की अपेक्षा से सुख दुःख देता है यदि ऐसा न माना जावे तब विहित तथा प्रतिषिद्ध सब कर्म व्यर्थ होजाते हैं क्योंकि जब परमात्मा की इच्छा पर ही बिना कर्म के फल निर्भर है तब कर्म करने की क्या आवश्यकता है ?

न्याय

तत् कारितत्वादहेतुः ॥४।१।२१॥

जीवात्मा कर्म करने वाला तथा ईश्वर उस कर्म के अनुसार फल के देने वाला है ।

सांख्य

स हि सर्ववित् सर्वकर्ता ॥३।५६॥

वह परमेश्वर सबके जानने वाला तथा सर्वकर्ता अर्थात् सबके बनाने वाला और सबका कर्मफलदाता है ।

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ १।२३ ॥

ईश्वर की भक्ति विशेष से समाधि का लाभ होता है, अर्थात् समाधि कर्मों का फल है अतः प्रभु ही समाधि प्रदान करता है ।

इस प्रकार सब दर्शनकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि फल देने वाला परमात्मा है ।

आकाश तथा काल की नित्यता

वेदान्त

न वियदश्रुतेः ॥ २ । ३ । १ ॥

आकाश की उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि उसकी उत्पत्ति वेद में नहीं लिखी।

शङ्का—अस्ति तु ॥२।३।२॥

'एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः' इत्यादि प्रमाणों में आकाश की उत्पत्ति लिखी है।

समाधान—**गौण्यसम्भवात्** २।३।३॥

जहां कहीं आकाश की उत्पत्ति का वर्णन आता है, वह गौण है क्योंकि जो पदार्थ प्रलय के समय सर्वत्र आकाश में विस्तृत होता है उसके इकट्ठा करने से जो अवकाश निकलता है वह आकाश है, उसकी उत्पत्ति असम्भव है।

शब्दाच्च ॥ २।३। ४ ॥

शब्द से भी आकाश नित्य है क्योंकि शब्द आकाश का गुण है, वह सदा रहता है।

शङ्का--स्वामी शङ्कर ने इन सूत्रों से आकाश को अनित्य सिद्ध किया।

समाधान---स्वामी शङ्कर ने जो आकाश की उत्पत्ति में युक्ति कथन की है वह अत्यन्त हास्यास्पद है। स्वामी शङ्कर कहते हैं, कि जो पदार्थ परस्पर भिन्न होते हैं वे अनित्य होते हैं जैसे घट पट आदि परस्पर विभक्त हैं अतः अनित्य हैं, ऐसे ही आकाश पृथिवी आदि से भिन्न है अतः अनित्य है यदि शङ्कर की युक्ति ठीक है तब ईश्वर ब्रह्म भी अनित्य मानना पड़ेगा क्योंकि वह भी तो पृथिवी आदि से भिन्न है। यदि कहो कि ब्रह्म स्वयं सिद्ध है, तब मैं कहता हूं कि आकाश भी स्वयं सिद्ध है, जैसे आकाश प्रमाणों से जाना जाता है, अतः आकाश नित्य है।

स्वामी दयानन्द

जगत् की उत्पत्ति के पूर्व परमेश्वर, प्रकृति, काल और आकाश अवकाश, तथा जीवों के अनादि होने से इस जगत् की उत्पत्ति होती है। यदि इनमें से एक भी न हो तो जगत भी न हो॥ सत्या० ८। पृ० २२६॥

उस परमेश्वर और प्रकृति से आकाश अवकाश अर्थात् जो कारणरूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था उसको इकट्ठा करने से अवकाश उत्पन्न सा होता है, वास्तव में आकाश की उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि विना आकाश के प्रकृति और परमाणु कहां ठहर सकें। सत्या० ८॥

इस प्रमाण से यह सिद्ध है कि श्री स्वामी जी आकाश तथा काल को नित्य मानते हैं।

न्याय

अव्यूहाविष्टम्भविभुत्वानि चाकाशधर्माः ॥ ४।२।२३ ॥

इकट्ठा न होना, बाधा न डालना, विभु सर्वगत होना आकाश के धर्म हैं, सर्वगतत्व से सिद्ध है कि आकाश नित्य है।

वैशेषिक

द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥ २ । १ । २८ ॥

आकाश द्रव्य है तथा नित्य है यह वायु की तरह जानना चाहिए।

द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥ २ । २ ।८॥

वायु की तरह काल भी द्रव्य तथा नित्य है।

सांख्य

न कालयोगतो व्यापिनोनित्यस्य सर्वसम्बन्धात् ॥ १ । १२ ॥

काल के योग से भी जीव का बन्धन नहीं हो सकता क्योंकि वह व्यापी तथा नित्य है।

इस प्रकार सब दर्शन आकाश तथा काल को नित्य मानते हैं।

शङ्का—सब दर्शनों में प्रत्येक बात का विस्तार से वर्णन क्यों नहीं आता?

समाधान—प्रत्येक दर्शन का एक मुख्य विषय है, अधिक विस्तार उसी विषय का आता है। न्याय का मुख्य विषय प्रमाण है, अतः अधिक विस्तार से वर्णन महर्षि गौतम ने प्रमाणों ही का किया है। वैशेषिक का मुख्य विषय प्रमेय है अतः उस में प्रमेय का विस्तार है। सांख्य का प्रधान विषय प्रकृति पुरुष का विवेचन तथा दुःख के कारण की अन्वेषणा करना है। योग का प्रधान विषय योग के साधनों का विवेचन करना है। मीमांसा का कर्म तथा वेदान्त का ब्रह्म विचार है। इस प्रकार से सब दर्शनकारों ने प्रधान विषय का मुख्यतया वर्णन तथा दूसरे विषयों का गौणतया वर्णन किया है।

इन विषयों के अन्दर दर्शनों का क्रम भी छिपा हुआ है। किसी पदार्थ को जानने के लिये प्रथम प्रमाणों की आवश्यकता होती है अतः न्याय में प्रमाण विस्तार है। प्रमाण के अनन्तर प्रमेय की आवश्यकता है अतः वैशेषिक में क्रमागत प्रमेय विस्तार है। प्रमाण प्रमेय के पश्चात् दुःख उसके कारण तथा किस पदार्थ से दुःख मिलता है। इसका सांख्य में विवेचन है। दुःख तथा उसके कारण जानने के पश्चात् उसके हटाने के साधनों की आवश्यकता है, इस बात का वर्णन योग में किया है।

जो योग के साधनों का अनुष्ठान नहीं कर सकता उसके लिये मीमांसा में सकाम निष्काम कर्मों का विस्तार से विवेचन है इन सब बातों से जब मनुष्य के चित्त के मल विक्षेप आवरण आदि दोष दूर हो जाते हैं तब सच्चे प्रभु के दर्शन होते हैं इसलिए वेदान्त में महर्षि व्यास जी ने ब्रह्म का सविस्तर वर्णन किया है। इस विषय भेद से तथा क्रम से यदि दर्शनों का विवेचन किया जावे तब प्रतीत होगा कि दर्शनों में कोई भी मतभेद नहीं है।

मुक्ति से पुनरावृत्ति

१. सब दर्शनकार मुक्ति को योगाभ्यासादि कर्मों का फल मानते हैं, परिमित कर्मों का फल अपरिमित नहीं हो सकता, अतः परिमित फल के होने से सब दर्शनों का यह सिद्धान्त ठहरता है कि मुक्ति रूपी कर्म फल भोगने के पश्चात् जीव पुनरपि संसार में लौट आता है।

२. सब दर्शनकार संसार को अनादि मानते हैं, इस की कोई भी गणना नहीं कर सकता कि इसको बने कितने वर्ष व्यतीत होगये, जब इतने लम्बे अनन्त काल में अनन्त पवित्र युगों के बीतने पर भी यदि जीवों की मुक्ति नहीं हुई, पुनःआगे के लिये मुक्ति की आशा करना दुराशामात्र है इस लिये मानना पड़ता है कि हमारी मुक्ति तथा अनेकबार बन्ध हुआ है।

३. इस बात को सब स्वीकार करते हैं कि स्वर्ग से जीव लौटता है। अब विचारणीय यह है कि स्वर्ग क्या है ? स्थान विशेष तो इसको मान नहीं सकते क्योंकि इसमें प्रमाण की न्यूनता है। दूसरी बात यह है कि स्थान विशेष मानें तब जिस स्थान में भी सुख होगा वह प्रत्येक स्थान स्वर्ग होजायगा इस लिये मानना पड़ेगा कि यह स्वर्ग जिससे पुनरावृत्ति मानते हैं जीव की अवस्था विशेष है। और यह मुक्ति है, जैसा कि वेद में लिखा है :--

स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्यां रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारं सुविद्वांसो वितेनिरे ॥

यजु० १७।६८॥

स्वर्ग को प्राप्त होने वाले किसी की अपेक्षा नहीं करते वे प्रकाशमान प्रभु को प्राप्त होते हैं जो विद्वान् सर्वोपकारी यज्ञ को करते हैं। इस मन्त्र में स्वर्ग नाम मुक्ति का है ।

वेदान्त

कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात् ॥ ४।३।१०॥

शरीर के नष्ट होने पर जीवात्मा मुक्ति में परमात्मा के साथ रहता है, इससे पर अर्थात् मुक्ति के अनन्तर परजन्म का विधान भी वेदों में पाया जाता है जैसा कि ऋ० १०। ६२ में लिखा है:—

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश । तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ १ ॥

जिन्होंने यज्ञादि शुभ कर्म किया तथा परमात्मा की मैत्री से अमृतपद मुक्ति प्राप्त की है, प्राणायाम करने वाले मुक्त पुरुषो ! तुम पुनरपि मनुष्य का शरीर धारण करो तुम्हारे लिये कल्याण हो ।

य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन् पृथिवीं मातरं वि। सुप्रजास्त्वमंगिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ ३ ॥

जिन्होंने सत्य के द्वारा परमात्मा को प्राप्त किया, तुम्हारी प्रजा श्रेष्ठ हो, हे मुक्त पुरुषो ! तुम फिर मनुष्य शरीर को धारण करो ।

अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन । सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वोऽस्तु प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ ४ ॥

यह तुम्हारे घरों में भगवान् का श्रेष्ठ वेदोपदेश है, इस को हे प्रभु के पुत्रो ऋषियो ! ध्यान से सुनो, तुम्हारे घरों में प्रति-दिन ब्रह्म की चर्चा हो हे मुक्त पुरुषो ! तुम पुनरपि मानव शरीर को धारण करो ।

इत्यादि अनेक वेदमन्त्रों में मुक्ति से पुनरावृत्ति की चर्चा है ।

कृतात्ययेनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च ॥
३ । १ ८ ॥

जिस कर्म के द्वारा जीव को मुक्ति प्राप्त हुई थी, उसके क्षय होने पर जीव अनुशयवान उपभुक्तशिष्ट कर्मानुशय जो कर्म अवशिष्ट रहता है उसके द्वारा पुनरपि पुनर्जन्म होता है । श्री स्वामी दयानन्द जी ऋ० १ । २५ । २ ॥ पुनरावृत्ति विषयक मन्त्र का अर्थ करते हुए लिखते हैं:—

अयमेव मुक्तानामपि जीवानां महाकल्पान्ते पुनः पाप-पुण्यतुल्यतया पितरि मातरि च मनुष्यजन्म कारयतीति च ॥

यह परमेश्वर पुण्य पाप के सम होने पर पुनः मुक्त जीवों का माता पिता द्वारा पुनर्जन्म कराता है।

कार्यं बादरिरस्यगत्युपपत्तेः ॥ ४ । ३ । ७ ॥

बादरायण कहते हैं—कि मुक्ति कार्य है अतःअनित्य है।

विशेषितत्वाच्च ॥ ४।३।८ ॥

'यावदायुषं' जब तक उसकी अवधि है तब तक मुक्ति में जीव रहता है।

सामीप्यात्तु तद्व्यपदेशः ॥ ४।३।९ ॥

ब्रह्म की समीपता से जीव में ब्रह्मवत् व्यपदेश है।

शङ्का—शङ्कराचार्य आदि इस सूत्र का ऐसा अर्थ करते हैं, कि जीव कर्मों के करने से ब्रह्मलोकादि लोकों में उस लोकके अध्यक्ष के साथ रहता है, मुक्ति उससे भी उत्कृष्ट है।

समाधान—मैं पूर्व ही लिख चुका हूं कि स्वर्ग, ब्रह्मलोक, अमृतादि सब मुक्ति के ही नाम हैं, जिस से लौटना सब शास्त्रकार मानते हैं। जो लोग ब्रह्मलोकादि को स्थान विशेष मानते हैं, वे कदापि उसको युक्ति प्रमाण से सिद्ध नहीं कर सकते।

शङ्का—अनावृत्ति शब्दादनावृत्तिशब्दात् ॥ ४।४।२२॥

वेदान्त के इस सूत्र में स्पष्ट मुक्ति से न लौटना लिखा है।

समाधान—प्रथम शङ्कराचार्य भी इस सूत्र को मुक्तिपरक नहीं मानते किन्तु ब्रह्मलोकपरक मानते हैं, तथा इसी सूत्र से जीव का लौटना मानते हैं। दूसरी बात यह है कि जिस छान्दोग्य के आधार पर यह सूत्र बना है उसमें लिखा है—

'यावदायुः' जितनी मुक्ति की अवधि है उससे पूर्व नहीं लौटता, यह सूत्र का अर्थ है।

पौराणिक यह मानते हैं कि राम, कृष्णादि सब ब्रह्म के अवतार हैं, जब ब्रह्म स्वयं संसार में शरीर धारण करता है, पुनः तुम्हारे मत में मुक्त जीव भी तो ब्रह्म ही हो जाता है अतः उसकी भी पुनरावृत्ति सिद्ध है।

सांख्य

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः ॥ १ । १५६ ॥

जैसे इस समय बन्ध का अत्यन्त उच्छेद नहीं है, इसी प्रकार अत्यन्त उच्छेद कभी भी नहीं होता, मुक्ति के पश्चात् पुनरपि जीव संसार में आ जाता है।

शङ्का— न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यनावृत्तिश्रुतेः।

सां० ॥६।१७॥

मुक्त का पुनः बन्ध के साथ योग नहीं होता क्योंकि श्रुति से अनावृत्ति सिद्ध है। इस सूत्र में सांख्यकार मानते हैं कि मुक्ति से पुनरावृत्ति नहीं होती।

समाधान—मैं प्रथम ही लिख चुका हूं कि जिस छान्दोग्य के प्रमाण पर यह सूत्र बना है, उससे पुनरावृत्ति सिद्ध है, प्रमाण निम्न लिखित है :—

शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान् विधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणि संप्रतिष्ठाप्याहिंसन् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोकमभि सम्पद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते ॥ छा० ८ खं० । १५।१॥

पवित्र देश में स्वाध्याय करता हुआ अपने आत्मा में धार्मिक भावों की धारणा करता हुआ सब इन्द्रियों के संयम वा अहिंसा के द्वारा ब्रह्म लोक मुक्ति को प्राप्त होता है, जब तक मुक्ति की आयु-अवधि है तब तक उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। शङ्कर आदि ने भी इस प्रमाण से यह सिद्ध किया है कि पुनरावृत्ति होती है।

सांख्य के इस सूत्र से एक यह बात भी सिद्ध होती है कि सांख्य-कार शङ्कर की तरह छान्दोग्य के इस प्रमाण से किसी स्थान विशेष ब्रह्म लोक को सिद्ध नहीं करते किन्तु इस प्रमाण को मुक्ति विषयक मानते हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्म लोक, मुक्ति, स्वर्ग आदि सब एक ही हैं जिनसे सब पुनरावृत्ति मानते हैं।

मन अणु है

इस विषय में भी छः दर्शनों का एक ही मत है कि मन का परिमाण अणु है। प्रमाण नीचे दिये जाते हैं :—

वेदान्त

पञ्चवृत्तिर्मनोवद्व्यपदिश्यते ॥ २ । ४ । १२ ॥

मन की तरह प्राण की पांच वृत्तियें हैं, यथा प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान।

अणुश्च ॥२।४।१३॥

जैसे मनोवद् प्राण की पांच वृत्तियें हैं वैसे ही मनकी तरह प्राण अणु भी है। इस अतिदेश से सिद्ध है कि महर्षि व्यास मन को अणु मानते हैं।

न्याय

ज्ञानायौगपद्यादेकं मनः ॥ ३ । २ । ५६॥

एक साथ अनेक ज्ञान न होने से सिद्ध है कि मन एक है।

यथोक्तहेतुत्वाच्चाणु ॥ ३।२।५६ ॥

पूर्वोक्त हेतु से सिद्ध है कि मन अणु है, क्योंकि यदि विभु होता तब एक साथ अनेक ज्ञान होते।

वैशेषिक

तदभावादणु मनः ॥ १ । १ । २३ ॥

विभु न होने से मन में महत् परिमाण नहीं किन्तु अणु परिमाण है।

इसी प्रकार सब दर्शनकार मन को अणु परिमाणयुक्त मानते हैं।

लिङ्ग शरीर

तीन शरीरों का वर्णन शास्त्रों में आता है। एक भौतिक, शरीर है जो त्वचा से लेकर अस्थि पर्यन्त है, दूसरा सूक्ष्म शरीर है, इसके दो भेद हैं, एक भौतिक, दूसरा अभौतिक, जो जीवात्मा के अपने गुण हैं। तीसरा कारण शरीर है यह प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियों से बनता है तथा सर्वत्र विद्यमान होता है इसके द्वारा प्रकाश, गमन आदि अनेक कार्य होते हैं। सूक्ष्म शरीर को लिङ्ग शरीर भी कहते हैं। प्रमाण निम्न-लिखित हैं—

वेदांत

तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहति सम्परिष्वक्त प्रश्ननिरूपणा-भ्याम्
॥ ३।१ १॥

जब जीवात्मा दूसरे देह में आता है तब लिङ्ग शरीर से युक्त होता है ऐसा ही निरूपण प्रश्नोत्तर द्वारा श्रुतियों में आता है। इससे यह भी सिद्ध है कि जीव अणु है क्योंकि एक शरीर को छोड़ कर अन्य शरीर में जाता है।

सांख्य

सप्तदशैकं लिङ्गम् ॥ ३।६॥

१७ तत्त्व, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच प्राण, पांच तन्मात्रा, बुद्धि, मन इनका लिङ्ग शरीर होता है।

इस प्रकार सब दर्शनकार लिङ्ग शरीर का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। न्याय दर्शन का भाष्य करते हुए महर्षि वात्स्यायन ने तथा वे० २।४।१२ का भाष्य करते हुए स्वामी शङ्कर ने न्याय का एक उदाहरण दिया है।

परमतमप्रतिषिद्धमनुमतं भवति।

जो मत किसी दर्शन में प्रतिपादन किया हो यदि अन्य दर्शनकार उसका निषेध न करे तब यह मानना चाहिये कि वह मत उसको अनुमत है। इस न्याय के अनुसार यदि किसी दर्शन में एक मत का प्रतिपादन किया गया हो तथा दूसरे दर्शन में न उसका प्रतिपादन हो और न निषेध तब यह जानना चाहिये कि वह सिद्धान्त उसको स्वीकार है।

पांचभूतों की सत्ता

पांच भूतों की सत्ता को भी सब दर्शनकार स्वीकार करते हैं। प्रमाण अधोलिखित हैं :—

न्याय

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशमिति भूतानि ॥ १ । १ । १३ ॥

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश ये भूत हैं।

वैशेषिक

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशम् ॥ १ । १ । ५ ॥

पृथिवी आदि द्रव्य तथा भूत हैं।

सांख्य

स्थूलात् पञ्चतन्मात्रस्य ॥ १ । ६२ ॥

स्थूल भूतों से पांच सूक्ष्म भूतों का अनुमान होता है।

योग

प्रकाशक्रिया स्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ।

प्रकाश क्रिया स्थिति वाला भूत तथा इन्द्रियात्मक दृश्य है ।

वेदान्त

त्र्यात्मकत्वात्तु भूयस्त्वात् ॥ ३ । १ । २ ॥

जीवात्मा जब देहान्तर में जाता है तब पांचों भूतों से परिवेष्टित होता है ।

मुक्ति में जीव की दशा

मुक्ति में जीव की क्या दशा होती है ? इस सिद्धान्त पर भी आधुनिक दार्शनिकों का मत भेद है, कतिपय कहते हैं, कि जीव ब्रह्म हो जाता है। कई कहते हैं कि जीव जड़वत् हो जाता है, कई कहते हैं सर्वथा नष्ट होता है मेरे विचार में जीव न ब्रह्म होता है, न नष्ट होता है, किन्तु अपने स्वरूप से ब्रह्म के आनन्द को भोगता है। प्रमाण निम्न लिखित हैं—

वेदान्त

सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दात् ॥ ४ । ४ । १॥

एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात् समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते छां० ८ । ३ । ४ ॥

परमात्मा को प्राप्त होकर जीवात्मा अपने रूप से प्रकट होता है ऐसा वेदादि शास्त्रों में लिखा है। अर्थात् जब तक जीव मुक्त नहीं होता तब तक शरीर से कार्य करता है, तथा मुक्त होकर स्वयं अपनी शक्तियों से कार्य करता है। स्वामी दयानन्द जी ने ९ वें समुल्लास में जीव की २४ शक्तियें स्वाभाविक लिखी हैं।

मुक्तः प्रतिज्ञानात् ॥४॥४॥२॥

मुक्त का ऐश्वर्य साधारण जीवों से आधिक होता है।

आत्मा प्रकरणात् ॥ ४।४।३ ॥

जीवात्मा जिस ज्योति को प्राप्त होता है, वह भौतिक नहीं किन्तु परमात्मा है ।

अविभागेन दृष्टत्वात् ॥ ४।४।४ ॥

मुक्ति में जीव प्रभु के सङ्ग रहता है, प्रकृति के सङ्ग नहीं ।

शङ्का—स्वामी शङ्कर इसका यह अर्थ करते हैं कि जीव ब्रह्म एक होजाता है ।

समाधान—ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ॥४।४।५ ॥

जैमिनि आचार्य कहते हैं कि अविभाग या समानता जीव ब्रह्म की यही है कि जीव मुक्ति में ब्रह्म के आनन्दादि का उपभोग करता है । यथा—

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिं ।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥

मुं० ३।२।३॥

जब देखने वाला ज्योतिस्वरूप संसारकर्ता निराकार रागादि रहित परमात्मा का दर्शन करता है तब उस की समता को प्राप्त होता है ।

चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ॥ ४।४।६ ॥

औडुलोमि कहते हैं कि चेतनता से भी समानता होती है ।

एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ॥ ४।४।७ ॥

व्यास जी कहते हैं कि इन दोनों ही बातों की मुक्ति में समानता होती है।

संकल्पादेव तु तच्छ्रुतेः ॥ ४।४।८ ॥

मुक्ति में जीव सङ्कल्प ही से सब कार्य करता है।

अत एव चानन्याधिपतिः ॥ ४।४।९ ॥

इस लिये उस का कोई अन्य सांसारिक राजादि अधिपति नहीं होता।

अभावं बादरिराह ह्येवम् ॥ ४।४।१० ॥

बादरी कहते हैं कि मुक्ति में शरीर नहीं रहता।

द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः ॥४।४।१२॥

व्यास जी कहते हैं कि दोनों ही पक्ष ठीक है भौतिक शरीर नहीं रहता तथा जीव का अपना स्वाभाविक शरीर रहता है। यही बात महर्षि दयानन्द जी ने लिखी है।

तन्वभावे सन्ध्यवदुपपत्तेः ॥ ४।४।१३ ॥

भौतिक शरीर के न होने पर भी जीव स्वप्नवत् ब्रह्मानन्द का उपभोग करता है। इस से सिद्ध है कि व्यास जी स्वप्न को नवीनों की तरह तुच्छ नहीं समझते।

शङ्का—जो पूर्व सूत्रों में जीव ब्रह्म की समानता बतलाई है उसके ये अर्थ क्यों नहीं किये जाते कि जीव ब्रह्म एक होजाता है ?

समाधान — **जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसंनिहितत्वाच्च ॥**
॥४।४।१७॥

जीव में यह सामर्थ्य कदापि नहीं हो सकती कि व ब्रह्म की तरह संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय कर सके अतःमुक्ति में जीव ब्रह्म नहीं होता ।

प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्नाधिकारिकमण्डलस्थोक्तेः ॥ ४।४।१८ ॥

यदि कहो कि प्रत्यक्ष जीव तथा ब्रह्म की एकता बतलाई है तब जीव ब्रह्म एक क्यों नहीं ? इस का यह उत्तर है कि जीव का ऐश्वर्य माण्डलिक राजा की तरह होता है निःसीम नहीं ।

विकारावर्ति च तथाहि स्थितिमाह ॥ ४४।१६ ॥

जीव की मुक्ति वा ऐश्वर्य जन्य होता है ।

दर्शयत चैवं प्रत्यक्षानुमाने ॥ ४।४।२०॥

ऐसा ही श्रुति स्मृति में लिखा है ।

भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च ॥ ४।४।२१ ॥

जीव तथा ब्रह्म की केवल भोगमात्र में समानता होती है, जीव ब्रह्म के आनन्द का केवल उपभोग मात्र करता है ।

शङ्का—सूत्र में जो अविभाग शब्द आया है उससे जीव ब्रह्म का एकत्व सिद्ध होता है।

समाधान—यह बात ठीक नहीं क्योंकि संसार में अनेक पदार्थ अविभक्त संयुक्त होते हैं इसका यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि दो पदार्थों के संयुक्त होने से वे एक होते हैं। जल, वायु, पृथिवी, आकाश आदि सब पदार्थ संयुक्त हैं, किन्तु वे एक नहीं। अनेक गाड़ियें इञ्जन के साथ संयुक्त होती हैं किन्तु वे एक नहीं होतीं।

योग

क्लेशकर्मविपाकाशयै। इस सूत्र का भाष्य करते हुए महर्षि व्यास लिखते हैं :—

कैवल्यं प्राप्तास्तर्हि सन्ति बहवः केवलिनः। हि त्रीणि बन्धनानि छित्त्वा कैवल्यं प्राप्ता ईश्वरस्य च तत् सम्बन्धो भूतो न भावी स तु सदैव मुक्तः सदैवेश्वरः

यदि क्लेशादि के रहित होने से परमात्मा है तब अनेक मुक्त जीव भी क्लेशादि से रहित हैं, पुनः वे ईश्वर क्यों नहीं ? इसका उत्तर व्यास जी यह देते हैं कि मुक्त जीव तीन बन्धनों को काट कर मुक्त होते हैं किन्तु परमात्मा सर्वदा मुक्त तथा सर्वदा ईश्वर है, उसका क्लेशादि के साथ सम्बन्ध भूत भविष्यत् किसी भी बात में नहीं होता। इस बात से स्पष्ट सिद्ध है कि योग तथा उसके भाष्यकार व्यास जो वेदान्त के कर्ता हैं वे मुक्ति में भी जीव तथा ईश्वर की सत्ता को भिन्न २ मानते हैं।

मूर्तिपूजा

बहुत से पौराणिक पण्डित यह कहा करते हैं कि मूर्तिपूजा परमात्मा की प्राप्ति का साधन है, परन्तु छः दर्शनों में कहीं भी मूर्तिपूजा का विधान नहीं आता, किन्तु इसके विपरीत खण्डन आता है। प्रमाण अधोलिखित हैं:—

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॥ ४ । १ । १ ॥

शास्त्रों में अनेक बार इसका उपदेश है कि ब्रह्म का उपदेश करना चाहिये। अतः आवृत्ति-पुनः २ योगाभ्यास करना चाहिये।

लिङ्गाच्च ॥ ४।१।२ ॥

वेद में भी ऐसा ही विधान आता है, यथा ऋ० १० ॥

एकः सुपर्णः समुद्रमाविवेश स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे ।
तं पाकेन मनसापश्यम् ॥ १०।११४।४॥

जो एक प्रभु सब संसार में व्यापक है, उसी प्रभु की उपासना पवित्र मन के द्वारा करनी चाहिये।

आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च ॥४।१। ३ ॥

जिसकी उपासना करनी चाहिये वह परमात्मा है ऐसा ही शास्त्रों में लिखा है।

न प्रतीके न हि सः ॥ ४।१।४ ॥

प्रतीक अर्थात् पाषाण आदि की मूर्ति में ध्यान नहीं लगाना चाहिये, वह परमात्मा नहीं है। इस सूत्र में स्पष्ट महर्षि व्यास ने प्रतीकोपासना का खण्डन किया है।

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् ॥ ४।१ ५ ॥

सम्पूर्ण वेदों में ब्रह्म दृष्टि अर्थात् ब्रह्म के ध्यान का ही उत्कर्ष आता है।

आदित्यादिमतयश्चाङ्ग उपपत्तेः ॥ ४।१।६ ॥

जो यज्ञ में आदित्य आदि मति है वहां भी आदित्य नाम परमात्मा के ही हैं।

ध्यानाच्च ॥ ४।१।७ ॥

अतः उस एक परमेश्वर का ही मुक्ति में ध्यान करना चाहिये इस प्रकरण में साफ़ व्यास जी ने पार्थिवाद पाषाणपूजा का निषेध किया है।

मुक्तों की कर्म व्यवस्था

जीवन मुक्तों के कर्म रहते हैं या नहीं तथा मुक्ति में सर्वथा कर्मों का अभाव होता है, या भाव, इस सिद्धान्त पर भी दर्शनों में पर्याप्त प्रकाश डाला है। नीचे विवेचना की जाती है—

तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ॥
वे० ४।१।१३॥

परमेश्वर की प्राप्ति के अनन्तर जीव के सञ्चित तथा भावी पाप कर्मों का असम्बन्ध तथा विनाश हो जाता है। ऐसा ही शास्त्र में आता है।

यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते ॥ छां० ४।१४।३॥

जैसे कमल पत्र को पानी स्पर्श नहीं करता वैसे ही मुक्त जीव को पाप कर्म स्पर्श नहीं करता।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ मुं०२।२।२७॥

प्रभु दर्शन के अनन्तर जीव के कर्म क्षीण हो जाते हैं।

इतरस्याप्येवमश्लेषपाते तु ॥ ४।१।१ ॥

पुण्य कर्म का भी शरीरपात के अनन्तर जीव से सम्बन्ध नहीं रहता।

अनारब्धकार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः ॥ ४।१।१५ ॥

तस्य तावदेव चिरं यावन्न मोक्ष्येऽथ संपत्स्ये ॥

छां० ६ । १४ । २ ॥

मुक्त जीव के सञ्चित तथा क्रियमाण ही कर्म क्षीण होते हैं प्रारब्ध कर्म नहीं, वे तो भोग कर ही क्षीण होते हैं।

शङ्का—इस प्रकरण में व्यास जी ने विस्पष्ट कर्मों का नष्ट होना लिखा है, पुनः मुक्ति से पुनरावृत्ति कैसे होगी ?

समाधान—इस प्रकरण में कर्मों का क्षीण होना तथा जीव से असम्पर्क लिखा है अत्यन्ताभाव नहीं।

शङ्का—जीवनमुक्त को कर्म करने चाहियें या नहीं ? वेदान्ती तो यह मानते हैं कि:—

निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां कोधिको निषेधः ।

जीवन मुक्ति के लिये विधि निषेध कुछ भी नहीं।

समाधान—आप्रायणात्तत्रापि हि दृष्टम् ॥ ४ । १ । १२ ॥

मरण पर्यन्त जीवन मुक्त को प्रभु का ध्यान करना चाहिये।

अग्निहोत्रादि तु तत् कार्यायैव तद्दर्शनात् ॥४।१।१६॥

अग्निहोत्रादि भी मुक्ति के लिये ही होते हैं। ऐसा ही शास्त्र में लिखा है।

तमेतं ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन ॥बृ० ४।४।२२॥

उस परमेश्वर को ब्राह्मण लोग यज्ञ, दानादि से प्राप्त करना चाहते हैं। इससे सिद्ध है कि जीवन मुक्त को भी कर्म करने चाहियें।

सांख्य

जीवन मुक्तश्च ॥ ३ । ७८ ॥

जीवन मुक्त पुरुष भी संसार में होते हैं । युक्ति अधो लिखित है—

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत् सिद्धिः ॥३।७६॥

यदि संसार में जीवन मुक्त न हों तब मुक्ति आदि का यथार्थ अनुभव कौन बतलायेगा, अतः जीवन मुक्त की सत्ता स्वीकार करना चाहिये ।

श्रुतिश्च ॥ ३।८० ॥

वेद से भी जीवनमुक्तों की सत्ता सिद्ध होती है ।

इतरथान्धपरम्परा ॥ ३।८१ ॥

यदि जीवन मुक्तों की सत्ता स्वीकार न की जावे तब संसार में अन्धपरम्परा चल जावे ।

चक्रभ्रमणवद्धृतशरीरः ॥३।८२॥

जैसे कोई मनुष्य किसी चक्र को घुमा कर छोड़ देवे तो पूर्व वेग से छोड़ने पर भी बड़ी देर तक घूमता रहेगा, इसी प्रकार जीवनमुक्तों का शरीर भी प्रारब्ध कर्मों से रहता है ।

सस्कारलेपतस्तत् सिद्धिः ॥ ३।८३ ॥

संस्कारों के लेप से जीवन मुक्तों का शरीर रहता है ।

मृत्यु के पश्चात्

मृत्यु के पश्चात् जीव की क्या गति होती है इस विषय में भी विद्वानों में मतभेद पाया जाता है, कतिपय कहते हैं कि जीव मरने के पश्चात् सूर्यादि लोकों में जाता है, पुनः वर्षा के द्वारा ओषधियों में आ कर पुरुष के वीर्य के द्वारा जन्म ग्रहण करता है। अपर विद्वानों का कथन है कि मरने के उपरान्त जीव उसी समय जन्म ग्रहण करता है, इस विषय पर भी कुछ प्रकाश डाला जाता है।

वेदान्त

वाङ्मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च ॥४।२।१॥

जब मनुष्य मरता है तब प्रथम उसकी वाणी मन में लीन होती है पुरुष बोलना बन्द कर देता है। ऐसा ही उपनिषद् में लिखा है :—

अस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम् ॥ छां०। ६।८।६॥

हे सोम्य ! जब यह मनुष्य मरता है तब इसकी वाणी मन में लीन होजाती है, मन प्राण में तथा प्राण तेज में और तेज जीवात्मा में प्राप्त होता है।

अत एव च सर्वाण्यनु ॥ ४।२।२।॥

वाणी के पश्चात् सब इन्द्रियें मन में लीन हो जाती हैं।

तन्मनः प्राण उत्तरात् ॥ ४।२।३ ॥

मन प्राण को प्राप्त होता है।

सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः ॥ ४।२ ४ ॥

वह प्राण जीवात्मा में लीन हो जाता है। ऐसा ही शास्त्र में लिखा है।

एवमेवात्मानमन्तकाले सर्वे प्राणा अभिसमायन्ति ॥

बृ० । ४ । ३ । ३८ ॥

इस प्रकार सब प्राण आत्मा में प्राप्त होते हैं।

समाना चासृत्युपक्रमादमृतत्वं चानुपोष्य ॥

वे० । ४ । २ । ३८ ॥

विद्वान् तथा अविद्वान् का वाणी आदि का मन आदि में लीन होना समान है केवल नाड़ी प्रवेश में विशेषता है।

तदोकाऽग्रज्वलन तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात्तच्छेष-गत्यनुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया ॥

॥ ४।२।७॥

ब्रह्मविद्या के बल से ब्रह्मप्राप्ति के स्मृति योग से जिसके लिये मोक्ष मार्ग का द्वार प्रकाशित हो गया है, जिस पर परमात्मा की पूर्ण कृपा है, जिसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश है वह योगी सुषुम्णा नाड़ी द्वारा छोड़ता है, तथा अन्य साधारण पुरुष दूसरी नाड़ियों द्वारा प्राण छोड़ते है, यही दोनों की विशेषता है।

शतं चैका च हृदयस्य नाडयस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विश्वङन्ये उत्क्रमणे भवन्ति ।

एक सौ एक हृदय की नाड़िये हैं, उनमें से एक नाड़ी मूर्धा को आती है उसी नाड़ी द्वारा योगी उत्क्रमण करता है, तथा मुक्ति को प्राप्त होता है, अन्य संसारी जीव दूसरी नाड़ियों से उत्क्रमण करते हैं।

रश्म्यनुसारी ॥ ४।२।१८ ॥

देह के त्याग समय में योगी सूर्य की रश्मियों के द्वारा उत्क्रमण करता है।

निशि नेति चेन्न सम्बन्धस्य यावद्देहभावित्वाद्दर्शयति च ॥
॥ ४।२।१९ ॥

यदि कहो कि रात्रि को सूर्य के न होने से किरणें कहां से आयेंगी तब ठीक नहीं क्योंकि शरीर के साथ सर्वदैव किरणों का सम्बन्ध रहता है। ऐसा ही लिखा है :—

अमुष्मादादित्यात् प्रतायन्ते ता आसु नाडीसु सृप्ताः।
आभ्यो नाड़ीभ्यः प्रतायन्ते ते अमुष्मिन्नादित्ये सृप्ताः ॥
छां । ८ । ६ । २ ॥

ये किरणें सूर्य से निकल कर नाड़ियों में प्रविष्ट होती हैं, नाड़ियों से निकल कर शरीर में प्रवेश करती हैं। शरीर से पुनः सूर्य में प्रवेश करती हैं।

मुक्त पुरुषों की गति

अर्चिरादिना तत् प्रथितेः ॥ ४ । ३ । १ ॥

मुक्त पुरुषों को अग्नि आदि लोक द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है। ऐसा ही लिखा है:—

स एतं देवयानमासाद्याग्निलोकमागच्छति स वायुलोकं स वरुणलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापतिलोकं स ब्रह्मलोकम्।
॥ कौ० । १ । ३ ॥

मनुष्य विद्वानों के मार्ग का अनुसरण करता हुआ, प्रथम अग्निलोक ज्ञान को प्राप्त होता है, पश्चात् वायुलोक कर्म करता है। तदनन्तर वरुणलोक श्रेष्ठता को प्राप्त होता है, उस श्रेष्ठता के द्वारा इन्द्र लोक अणिमादि सिद्धियों के ऐश्वर्य को प्राप्त होता है, उसके पश्चात् ब्रह्मलोक मुक्ति को प्राप्त होता है।

शङ्का—कतिपय विद्वान् अग्निलोकादि शब्दों का अर्थ स्थान विशेष करते हैं पुनः आपने अवस्था विशेष कैसे किया है ?

समाधान—'लोक्यत इति लोकः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार लोक शब्द के अर्थ अनुभव विशेष के हैं जैसे कि कठ में लिखा है:—

यथादर्शे तथात्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके यथाप्सु परीव दृश्यते तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके।
॥ ६ । ५ ॥

जैसे दर्पण में मुख की स्पष्ट प्रतीति होती है, इसी प्रकार शुद्धान्तःकरण पुरुष को परमात्मा की स्पष्ट प्रतीति होती है, जैसे स्वप्न में पदार्थ यथार्थ प्रतीत नहीं होते वैसे ही केवल कर्मी लोगों को

परमात्मा स्पष्ट प्रतीत नहीं होता तथा जैसे जल में भली प्रकार मुख दिखाई नहीं देता वैसे ही गन्धर्व लोक रसिकों को परमात्मा की स्पष्ट प्रतीति नहीं होती। ब्रह्मज्ञानियों को ही परमात्मा का यथार्थ ज्ञान होता है, यहां भी लोक शब्द का अर्थ स्थानविशेष नहीं है। स्वामी शङ्कर ने भी अनेक स्थानों पर 'ब्रह्मैव लोक ब्रह्म लोकः' अर्थ किया है, अतः इस प्रकरण में लोक शब्द का अर्थ अवस्था विशेष है।

सांख्य

सम्प्रति परिमुक्तो द्वाभ्याम् ॥ ६।६ ॥

शरीरपात के अनन्तर जब तक जीव दूसरा शरीर धारण नहीं करता तब तक उस को सुख वा दुःख नहीं होता।

चार अवस्था

सन्ध्ये सृष्टिराह हि ॥ वे० ३ । २। १ ॥

स्वप्न में भी सृष्टि उपनिषदों में लिखी है—

न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्ति ।

अथ रथान् रथयोगान् रथपथः सृजते ॥ बृ० ४ ।३४ ॥

स्वप्न में रथ, रथ मार्ग आदि के न होने पर भी इन की रचना होती है।

निर्मातारं चैके पुत्रादयश्च ॥ ३ । २।२ ॥

कईयों का कथन है कि वहां निर्माता तथा पुत्रादि भी होते हैं।

मायामात्रं तु कार्त्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात् ॥ ३।२।३॥

स्वप्न में बुद्धिमात्र ज्ञानमात्र होता है क्योंकि पूर्णतया सब पदार्थ अभिव्यक्त रूप में नहीं होते।

सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः ॥ ३।२।४॥

स्वप्न शुभ तथा अशुभ संस्कारों का सूचक होता है। जैसे शुभ तथा अशुभ मनुष्य के विचार होते हैं, वैसाही स्वप्न आता है।

शङ्का—जीव को विपरीत ज्ञान तथा मिथ्या स्वप्नादि क्यों होते हैं?

समाधान— **पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययौ** ॥ ३।२।५॥

परमात्मा के ध्यान भजन भक्ति से तिरोहित छिपा हुआ अर्थात् प्रभु की भक्ति से जीव जब तक ओझल रहता है जब तक उस की भक्ति नहीं करता, तब तक इसको बन्ध व विपरीत ज्ञान होते रहते हैं।

देहयोगाद्वा सोऽपि ॥ ३।२।६॥

पूर्वकृत कर्म द्वारा जो इस को देह मिलता है उस से भी इस का बन्ध होता है

तदभावो नाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च ॥ ३।२।७॥

पुरीतत् नाड़ी में स्वप्न का अभाव होने से आत्मा में सुषुप्ति होती है।

अतः प्रबोधोऽस्मात् ॥ ३।२।८॥

सुषुप्ति के अनन्तर जाग्रत् अवस्था होती है।

स एव तु कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्याम् ॥ ६॥

जो जीव सुषुप्ति आदि में होती है वही जाग्रत का भोक्ता होता है।

१. यदि सम्पूर्ण अवस्थाओं का जीव भिन्न २ माना जावे तब कर्म की कोई भी व्यवस्था नहीं रह सकती, क्योंकि कर्म का कर्ता भिन्न तथा भोक्ता भिन्न इस से कृतहान तथा अकृताभ्यगम दोष भी आता है।

२. जाग्रत् में जीव कहता है मैं अत्यन्त आनन्द से सोया इस अनुस्मृति से सिद्ध है कि सुषुप्ति वा जाग्रत् का जीव एक ही है।

॥ इति ॥